

सरस्वती- लीला आख्यान

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस पृथ्वी में एक महातेजवान् राजा पद्म हुआ था । वह लक्ष्मीवान्, सन्तानवान्, मर्यादा का धारनेवाला अति सतोगुणी और दोषों का नाशकर्ता एवं प्रजापालक, शत्रुनाशक और मित्रप्रिय था और सम्पूर्ण राजसी और सात्विकी गुणों से सम्पन्न मानो कुल का भूषण था । लीला नाम उसकी स्त्री बहुत सुन्दरी और पतिव्रता थी मानो लक्ष्मी ने अवतार लिया था । उसके साथ राजा कभी बागों और तालों और कभी कदम्बवृक्षों और कल्पवृक्षों में जाया करता था, कभी सुन्दर-सुन्दर स्थानों में जाके क्रीड़ा करता था ; कभी बरफ का मन्दिर बनवाके उसमें रहता था और कभी रत्नमणि के जड़े हुए स्थानों में शय्या बिछवाके विश्राम करता था । निदान इसी प्रकार दोनों दूर और निकट के ठाकुरद्वारों और तीर्थों में जाके क्रीड़ा करते और राजसी और सात्विकी स्थानों में विचरते थे । वे दोनों परस्पर श्लोक भी बनाते थे एक पद कहे दूसरा उसको श्लोक करके उत्तर दे और श्लोक भी ऐसे पढ़ें कि पढ़ने में तो संस्कृत परन्तु समझने में सुगम हो । इसी प्रकार दोनों का परस्पर अति स्नेह था । एक समय रानी ने विचार किया कि राजा मुझको अपने प्राणों की नाईं प्यारे और बहुत सुन्दर हैं इसलिये कोई ऐसा यत्न, यज्ञ वा तो-दान करूँ कि किसी प्रकार इसकी सदा युवावस्था रहे और अजर-अमर हो इसका और मेरा कदाचित वियोग न हो । ऐसा विचार कर उसने ब्राह्मणों, ऋषीश्वरों और मुनीश्वरों से पूछा कि हे विप्रो! नर किस प्रकार अजर-अमर होता है? जिस प्रकार होता हो हमसे कहो? विप्र बोले, हे देवि! जप, तप आदि से सिद्धता प्राप्त होती है । परन्तु अमर नहीं होता । सब जगत् नाशरूप है इस शरीर से कोई स्थिर नहीं रहता । हे रामजी! इस प्रकार ब्राह्मणों से सुन और भर्ता के वियोग से डरकर रानी विचार करने लगी कि भर्ता से मैं प्रथम मरूँ तो मेरे बड़े भाग हों और सुखवान् होऊँ और जो यह प्रथम मृतक हो तो वही उपाय करूँ जिससे राजा का जीव मेरे अन्तःपुर में ही रहे बाह्य न जावे और मैं दर्शन करती रहूँ । इससे मैं सरस्वती की सेवा करूँ । हे रामजी! ऐसा विचार शास्त्रानुसार तपरूप सरस्वती का पूजन करने लगी । निदान तीन रात्र और दिनपर्यन्त निराहार रह चतुर्थदिन में व्रतपारण करे और देवतों, ब्राह्मणों , पण्डितों गुरु और जानियों की पूजा करके स्नान, दान, तप ध्यान नित्यप्रति कीर्तन करे पर जिस प्रकार आगे रहती थी उसी प्रकार रहे भर्ता को न जनावे । इसी प्रकार नेमसंयुक्त क्लेश से रहित तप करने लगी । जब तीन सौ दिन व्यतीत हुए तब प्रीतियुक्त हो सरस्वती की पूजा की और वागीश्वरी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा, हे पुत्रि! तूनेभर्ता के निमित्त निरन्तर तप किया है, इससे मैं प्रसन्न हुई, जो वर तुझे अभीष्ट हो सो माँग । लीला बोली, हे देवि । तेरी जय हो । मैं अनाथ तेरी शरण हूँ मेरी रक्षा करो । इस जन्म को जरारूपी अग्नि जो बहुत प्रकार से जलाती है उसके शान्त करने को तुम चन्द्रमा हो और हृदय के तम नाश करने को तुम सूर्य हो । हे माता! मुझको दो वर दो-एक यह कि जब मेरा भर्ता मृतक हो तब उसका पुर्यष्टक बाह्य न जावे अन्तःपुर ही में रहे और दूसरा यह कि जब मेरी इच्छा तुम्हारे दर्शन की हो तब तुम दर्शन दो ।

सरस्वती ने कहा ऐसा ही होगा । हे रामजी! ऐसा वरदान देकर जैसे समुद्र में तरंग उपजके लीन होते हैं वैसे ही देवी अन्तर्धान हो गई और लीला वरदान पाकर बहुत प्रसन्न हुई । कालरूपी चक्र में क्षणरूपी आरे लगे हुए हैं और उसकी तीनसौ साठ कीलें हैं वह चक्र वर्ष पर्यन्त फिरकर फिर उसी ठौर आता है । ऐसे कालचक्र के वर्ग से राजा पद्म रणभूमि में घायल होकर घर में आकर मृतक हो गया । पुर्यष्टक के निकलने से राजा का शरीर कुम्हिला गया और रानी उसके मरने से बहुत शोक वान् हुई । जैसे कमलिनी जल बिना कुम्हिला जाती है वैसे ही उसके मुख की कान्ति दूर हो गई और विलाप करने लगी । कभी ऊँचे स्वर से रुदन करे और कभी चुप रह जावे । जैसे चकवे के वियोग से चकवी शोकवान् होती है और जैसे सर्प की फुत्कार लगने से कोई मूर्च्छित होता है वैसे ही राजा के वियोग से लीला मूर्च्छित हो गई और व्याकुल होके प्राण त्यागने लगी । तब सरस्वती ने दया करके आकाशवाणी की कि हे सुन्दरि! तेरा भर्ता जो मृतक हुआ है इसको तू सब ओर से फूलों से ढाँप कर रख, तुझको फिर भर्ता की प्राप्ति होवेगी और यह फूल न कुम्हिलावेंगे । तेरे भर्ता की ऐसी अवस्था है जैसे आकाश की निर्मल कान्ति है और वह तेरे ही मन्दिर में है कहीं गया नहीं । हे रामजी इस प्रकार कृपा करके जब देवी ने वचन कहे तो जैसे जल बिना मछली तड़पती हुई मेघ की वर्षा से कुछ शान्तिमान् होती है वैसे ही लीला कुछ शान्तिमान् हुई । फिर जैसे धन हो और कृपणता से धन का सुख न होवे वैसे ही वचनों से उसे कुछ शान्ति हुई और भर्ता के दर्शन बिना जब पूर्ण शान्ति न हुई तब उसने ऊपर नीचे फूलों से भर्ता को ढाँपा और उसके पास आप शोक मान् होकर बैठी रुदन करने लगी । फिर देवी की आराधना की तो अर्द्धरात्रि के समय देवीजी आ प्राप्त हुई और कहा, हे सुन्दरि! तेने मेरा स्मरण किस निमित्त किया है और तू शोक किस कारण करती है । यह तो सब जगत् भ्रान्तिमात्र है । जैसे मृगतृष्णा की नदी होती है वैसे ही यह जगत् है । अहं त्वं इदं से ले आदिक जो जगत् भासता है सो सब कल्पनामात्र है और भ्रम करके भासता है । आत्मा में हुआ कुछ नहीं तुम किसका शोक करती हो । लीला बोली हे परमेश्वरि! मेरा भर्ता कहाँस्थित है और उसने क्या रूप धारण किया है? उसको मुझे मिलाओ, उसके बिना मैं अपना जीना नहीं देख सकती । देवी बोली हे लीले! आकाश तीन है-एक भूताकाश, दूसरा चित्ताकाश और तीसरा चिदाकाश । भूताकाश चित्ताकाश के आश्रय है और चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रय है तेरा भर्ता अब भूताकाश को त्यागकर चित्ताकाश को गया है । चित्ताकाश चिदाकाश के आश्रय स्थित है इससे जब तू चिदाकाश में स्थित होगी तब सब ब्रह्माण्ड तुझको भासेगा । सब उसी में प्रतिबिम्बित होते हैं वहाँ तुझको भर्ता का और जगत् का दर्शन होगा । हे लीले । देश से क्षण में संवित देशान्तर को जाता है उसके मध्य जो अनुभव आकाश है वह चिदाकाश है । जब तू संकल्प को त्याग दे तो उससे जो शेष रहेगा सो चिदाकाश है । हे लीले! यहाँ जो जीव विचरते हैं सो पृथ्वी के आश्रय हैं और पृथ्वी आकाश के आश्रय है, इससे ये जीव जो विचरते हैं सो भूताकाश के आश्रय विचरते हैं और चित्त जिसके आश्रय से क्षण में देश देशान्तर भटकता है सो चिदाकाश है । हे लीले! जब दृश्य का अत्यन्त अभाव होता है तब परमपद की प्राप्ति होती है सो चिरकाल के अभ्यास से

होती है और मेरा यह वर है कि तुझको शीघ्र ही प्राप्त हो । हे रामजी! जब इस प्रकार कहकर ईश्वरी अन्तर्धान हो गई तब लीला रानी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई और देह का अहंकार त्याग कर चित्त सहित पक्षी के समान अपने गृह से उड़कर एक क्षण में आकाश को पहुँची जो नित्य शुद्ध अनन्त आत्मा परमशान्तिरूप और सबका अधिष्ठान है उसमें जाकर भर्ता को देखा । रानी स्पन्दकल्पना ले गई थी उससे अपने भर्ता को वहाँ देखा और बहुत मण्डलेश्वर भी सिंहासनों पर बैठे देखे । एक बड़े सिंहासन पर बैठे अपने भर्ता को भी देखा जिसके चारों ओर जय जय शब्द होता था । उसने वहाँ बड़े सुन्दर मन्दिर देखे और देखा कि राजा के पूर्व दिशा में अनेक ब्रह्मण ऋषीश्वर और मुनीश्वर बैठे हैं और बड़ी ध्वनि से पाठ करते हैं । दक्षिण दिशा में अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकार के भूषणों सहित बैठी हुई हैं । उत्तरदिशा में हस्ती, घोड़े, रथ, प्यादे और चारों प्रकार की अनन्त सेना देखी और पश्चिम में मण्डलेश्वर देखे । चारों दिशा में मण्डलेश्वर आदि उस जीव के आश्रय विराजते देखके आश्चर्य में हुई । फिर नगर और प्रजा देखी कि सब अपने व्यवहार में स्थित हैं और राजा की सभा में जा बैठी पर रानी सबको देखती थी और रानी को कोई न देखता था । जैसे और के संकल्पपुर को और नहीं देखता वैसे ही रानी को कोई देख न सके । तब रानी ने उसका अन्तःपुर देखा जहाँ ठाकुरद्वारे बने हुए देवताओं की पूजा होती थी । वहाँ की गन्ध, धूप और पवन त्रिलोकी को मग्न करती थी और राजा का यश चन्द्रमा की नाई प्रकाशित था । इतने में पूर्व दिशा से हरकारे ने आके कहा कि हे राजन्! पूर्व दिशा में और किसी राजा को क्षोभ हुआ । फिर उत्तर दिशा से हरकारे ने आ कहा कि हे राजन्! उत्तरदिशा में और राजा का क्षोभ हुआ है और तुम्हारे मण्डलेश्वर युद्ध करते हैं । इसी प्रकार दक्षिण दिशा की ओर से भी हरकारा आया और उसने भी कहा कि और राजा का क्षोभ हुआ है और पश्चिम दिशा से हरकारा आया उसने कहा कि पश्चिम दिशा में भी क्षोभ हुआ है । एक और हरकारा आया उसने कहा कि सुमेरु पर्वत पर जो देवतों और सिद्धों के रहने के स्थान हैं वहाँ क्षोभ हुआ है और अस्ताचल पर्वत क्षोभ हुआ है । तब जैसे बड़े मेघ आवें वैसे ही राजा की आज्ञा से बहुत सी सेना आई । रानी ने बहुत से मन्त्री, नन्द आदिक टहलिये, ऋषीश्वर और मुनीश्वर वहाँ देखे । जितने भृत्य थे वे सब सुन्दर और वर्षा से रहित बादलों की नाई श्वेत वस्त्र पहिने देखे और बड़े वेदपाठी ब्राह्मण देखे जिनके शब्द से नगारे के शब्द भी सूक्ष्म भासते थे! हे रामजी! इस प्रकार ऋषीश्वर , मन्त्री, टहलिये और बालक उसमें देखे, सो पूर्व और अपूर्व दोनों देखती भई और आश्चर्यवान् हो चित्त में यह शंका उपजी कि मेरा भर्ता ही मुआ है वा सम्पूर्ण नगर मृतक हुआ है जो ये सब परलोक में आये हैं । तब क्या देखा कि मध्याह्न का सूर्य शीश पर उदित है और राजा सुन्दर षोडश वर्ष का प्रथम की जरावस्था को त्यागकर नूतन शरीर को धारे बैठा है । ऐसे आश्चर्य को देख के रानी फिर अपने गृह में आई । उस समय आधीरात्रि का समय था अपनी सहेलियों को सोई हुई देख जगाया और कहा जिस सिंहासन पर मेरा भर्ता बैठा था उसको साफ करो मैं उसके ऊपर बैठूँगी और जिस प्रकार उसके निकट मन्त्री और भृत्य आन बैठते थे उसी प्रकार आवें । इतना सुनकर सहेलियों ने जा बड़े मन्त्री से कहा और मन्त्री ने सबको जगाया

और सिंहासन झड़वाकर मेघ की नाई जल की वर्षा की । सिंहासन पर और उसके आसपास मेघ की नाई जल की वर्षा की । सिंहासन पर और उसके आसपास वस्त्र बिछाये और मशालें जलाकर बड़ा प्रकाश किया । जैसे अगस्त्यमुनि ने समुद्र को पान किया था वैसे ही अन्धकार को प्रकाश ने जब पान कर लिया तब मन्त्री, टहलुये , पण्डित, ऋषीश्वर ज्ञानवान् जितने कुछ राजा के पास आते थे वे सब सिंहासन के निकट आकर बैठे और इतने लोग आये मानों प्रलयकाल में समुद्र का क्षोभ हुआ है और जल से पूर्ण प्रलय हुई सृष्टि मानों पुनः उत्पन्न हुई है । लीला इस प्रकार मन्त्री, टहलुये, पण्डित और बालकों को भर्ता बिना देखे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुई कि एक आदर्श को अन्तर बाहर दोनों और देखती है । इस प्रकार देखके हृदय की वार्ता किसी को न बताई और भीतर आकर कहने लगी कि बड़ा आश्चर्य है, ईश्वर की माया जानी नहीं जाती कि यह क्या है । इस प्रकार आश्चर्यमान होकर उसने सरस्वतीजी की आराधना की और सरस्वती कुमारी कन्या का रूप धरके आन प्राप्त हुई । तब लीला ने कहा, हे भगवती! मैं बारम्बार पूछती हूँ तुम उद्वेगवान् न होना, बड़ों का यह स्वभाव होता है कि जो शिष्य बारम्बार पूछे तो भी खेदवान् नहीं होते । अब मैं पूछती हूँ कि यह जगत् क्या है और वह जगत् क्या है? दोनों में कृत्रिम कौन है और अकृत्रिम कौन है? देवी बोली, हे लीले! तूने पूछा कि कृत्रिम कौन है और अकृत्रिम कौन है सो मैं पीछे तुझसे कहूँगी । लीला बोली, हे देवि! जहाँ तुम हम बैठे हैं वह अकृत्रिम है और वह जो मेरे भर्ता का स्वर्ग है सो कृत्रिम है, क्योंकि सूर्यस्थान में वह सृष्टि हुई है । देवी बोली, हे लीले! जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है । जो कारण सत् होता है तो कार्य भी सत् होता है और सत् से असत् नहीं होता और असत् से सत् भी नहीं होता और न कारण से अन्य कार्य होता है । इससे जैसे यह जगत् है वैसा ही वह जगत् भी है । इतना सुन फिर लीला ने पूछा, हे देवि! कारण से अन्य कार्यसत्ता होती है, क्योंकि मृत्तिका जल के उठाने में समर्थ नहीं और जब मृत्तिका का घट बनता है तब जल को उठाता है तो कारण से अन्य कार्य की भी सत्ता हुई । देवी बोली, हे लीले! कारण से अन्य कार्य की सत्ता तब होती है जब सहायकारी भिन्न होता है । जहाँ सहायकारी नहीं होता वहाँ कारण से अन्य कार्य की सत्ता नहीं होती । तेरे भर्ता की सृष्टि भी कारण बिना भासी है । उसका जीवपुर्यष्टक आकाशरूप था, वहाँ न कोई समवायकारण था, और न निमित्त कारण था इससे उसको कृत्रिम कैसे कहिये? जो किसी का किया हो तो कृत्रिम हो पर वह तो आकाशरूप पृथ्वी आदिक तत्त्वों से रहित है । जो समवाय कारण ही न हो तो उसका निमित्तकारण कैसे हो । इससे तेरे भर्ता का सर्ग अकारण है । लीला ने पूछा हे देवि! उस सर्ग की जो संस्काररूप स्मृति है सो कारण क्यों न हो? देवी बोली, हे लीले! स्मृति तो कोई वस्तु नहीं है । स्मृति आकाश रूप है । स्मृति संकल्प का नाम है सो वह भी संकल्प आकाशरूप है और कोई वस्तु नहीं वह मनोराजरूप है इससे उसकी सत्ता भी कुछ नहीं है केवल आभासरूप है । लीला बोली, हे महेश्वरि! यदि वह संकल्प मात्र आकाशरूप है तो जहाँ हम तुम बैठे हैं वह भी वही है तो दोनों तुल्य हैं । देवी बोली, हे लीले! जैसा तुम कहती हो वैसा ही है । अहं, त्वं, इदं, यह, वह सम्पूर्ण जगत् आकाशरूप है और भ्रान्तिमात्र भासता है । उपजा कुछ नहीं सब आकाशमात्र है

और स्वरूप से इनका कुछ सद्भाव नहीं होता । जो पदार्थ सत्य न हो उसकी स्मृति कैसे सत् हो? लीला बोली हे देवि! अमूर्ति मेरा भर्ता था सो मूर्तिवत् हुआ और उसको जगत् भासने लगा सो कैसे भासा? उसका स्मृति कारण है वा किसी और प्रकार से, यह मेरे दृश्यभ्रम निवृत्ति के निमित्त मुझको वही रूप कहो । देवी बोली, हे लीले! यह और वह सर्ग दोनों भ्रमरूप हैं । जो यह सत् हो तो इसकी स्मृति भी सत् हो पर यह जगत् असत् रूप है । जैसे यह भ्रम तुमको भासा है सो सुनो । एक महाचिदाकाश है जिसका किञ्चन चिद्गुण है और उसके किसी अंश में जगत् रूपी वृक्ष है । सुमेरु उस वृक्ष का थम्भ है, सप्तलोक डाली हैं, आकाश शाखें हैं, सप्तसमुद्र उसमें एक पर्वत है जिसके नीचे एक नगर बसता है । वहाँ एक नदी का प्रवाह चलता है और वशिष्ठ नाम एक ब्राह्मण जो बड़ा धार्मिक था वहाँ सदा अग्निहोत्र करता था । धन, विद्या, पराक्रम और कर्मों में वशिष्ठजी ऋषीश्वरों के समान था परन्तु ज्ञान में भेद था । जैसा खेचर वशिष्ठ का ज्ञान है वैसा भूचर वशिष्ठ का ज्ञान न था । उसकी स्त्री का नाम अरुन्धती था । वह पतिव्रता और चन्द्रमा के समान सुन्दरी थी और उसी अरुन्धती के समान विद्या, कर्म, कान्ति, धन, चेष्टा और पराक्रम उसका भी था और चैतन्यता अर्थात् ज्ञान और सबलक्षण एक समान थे । वह आकाश की अरुन्धती थी और यह भूमि की अरुन्धती थी! एक काल में वशिष्ठ ब्राह्मण पर्वत के शिखर पर बैठा था । वह स्थान सुन्दर हरे तृणों से शोभायमान था एक दिन एक अति सुन्दर राजा नाना प्रकार के भूषणों से भूषित परिवार सहित उस पर्वत के निकट शिकार खेलने के निमित्त चला जाता था । उसके शीश पर दिव्य चमर होता ऐसा शोभा देता था मानो चन्द्रमा की किरणें प्रसर रही हैं और शिर पर अनेक प्रकार के छत्रों की छाया मानों रूपे का आकाश विदित होता था । रत्नमणि के भूषण पहिरे हुए मण्डलेस्वर उसके साथ थे और हस्ती, घोड़े रथ और पैदल चारों प्रकार की सेना जो आगे चली जाती थी उनकी धूलि बादल होकर स्थित हुई निदान नौबत नगारे बजते हुए राजा की सवारी जाती देख के वशिष्ठ ब्राह्मण मन में चिन्तवन करने लगा कि राजा को बड़ा सुख प्राप्त होता है, क्योंकि सब सौभाग्य से राजा सम्पन्न होता है । इस प्रकार राज्य मुझको भी प्राप्त हो । तब तो वह यह इच्छा करने लगा कि मैं कब दिशाओं को जीतूँगा और मेरे यश से कब दशों दिशा पूर्ण होंगी ऐसे छत्र मेरे शिर पर कब दुरेंगे और चारों प्रकार की सेना मेरे आगे कब चलेगी । सुन्दर मन्दिरों में सुन्दरी स्त्रियों के साथ मैं कब बिलास करूँगा और मन्द मन्द शीतल पवन सुगन्धता के साथ कब स्पर्श होगा । हे लीले! जब इस प्रकार ब्राह्मण ने संकल्प को धारण किया और जो अपने स्वकर्म थे सो भी करता रहा कि इतने ही में उसको जरावस्था प्राप्त हुई । जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ता है तो कुम्हिला जाता है वैसे ही ब्राह्मण का शरीर कुम्हिला गया और मृत्यु का समय निकट आया । जब उसकी स्त्री भर्ता की मृत्युनिकट देखके कष्टवान् हुई तो उसने मेरी आराधना, जैसे तूने की है, की और भर्ता की अजर अमरता को दुर्लभ जानके मुझसे वर माँगा कि हे देवि! मुझको यह बर दे कि जब मेरा भर्ता मृतक हो तब इसका जीव बाह्य न जावे । तब मैंने कहा ऐसा ही होगा । हे लीले! जब बहुत काल व्यतीत हुआ तो ब्राह्मण मृतक हुआ पर उसका जीव मन्दिर में ही रहा । जैसे मन्दिर में आकाश रहता है वैसे ही

मन्दिर में रहा । हे लीले! जब वह आकाश रूप हो गया तब उसकी पुर्यष्टक में जो राजा का दृढ़ संकल्प था इसलिये जैसे बीज से अंकुर निकल आता है वैसे ही वह संकल्प आन फुरा और उससे वह अपने को त्रिलोकी का राजा और परम सौभाग्य सम्पन्न देखने लगा कि दर्शा दिशा मेरे यश से पूर्ण हो रही हैं;मानो यशरूपी चन्द्रमा की यह पूर्णमासी है । जैसे प्रकाश अन्धकार को नाश करता है वैसे ही वह शत्रुरूपी अन्धकार का नाशकर्ता प्रकाश हुआ और ब्राह्मणों के चरणों का सिंहासन हुआ अर्थात् ब्राह्मणों को बहुत पूजने लगा । निदान अर्थियों को कल्पवृक्ष और स्त्रियों को कामदेव और स्त्रियों को कामदेव इत्यादिक जो सात्विकी और राजसी गुण हैं उनसे सम्पन्न हुआ । पर उसकी स्त्री उसको मृतक देखके बहुत शोकवान् हुई । जैसे जेठ आषाढ़ की मञ्जरी सूख जाती है वैसे ही वह सूख गई और शरीर को छोड़ के अन्तवाहक शरीर से अपने भर्ता को वैसे ही जा मिली जैसे नदी समुद्र को जा मिलती है और ब्राह्मण के पुत्र धन संयुक्त अपने गृह में रहे । उस ब्राह्मण को मृतक हुए अब आठ दिन हुए हैं कि वही वशिष्ठ ब्राह्मण तेरा भर्ता राजा पद्म हुआ । अरुन्धती उसकी स्त्री तू लीला हुई । जितना कुछ आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और त्रिलोकी है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के अन्तःपुर में एक कोने में स्थित है । वहाँ तुमको आठ दिन व्यतीत हुए हैं और अभी सूतक भी नहीं गया पर यहाँ तुमने साठ सहस्र वर्ष राज्य करके नाना प्रकारके सुन्दर भोग भोगे हैं । हे लीले! जिस प्रकार तूने जन्म लिया है सो मैंने सब कहा है । पर वह क्या है? सब भ्रममात्र है । जितना कुछ जगत् तुमको भासता है सो आभासमात्र है संकल्प से फुरता है वास्तव से कुछ नहीं है हे लीले! जो यह जगत् सत् न हुआ तो इसकी स्मृति कैसे सत्य हो । तुम हम और सब उसी ब्राह्मण के मन्दिर में स्थित हैं । लीला बोली, हे देवि! तुम्हारे वचन को मैं असत् कैसे कहूँ? पर जो तुम कहती हो कि उस ब्राह्मण का जीव अपने गृह में ही रहा; वहाँ हम तुम बैठे हैं और देश देशान्तर, पर्वत, समुद्र, लोक और लोकपालक सब जगत् उसी ही गृह में है तो वह उसमें समाते कैसे हैं? ये वचन तुम्हारे ऐसे कोई कहे कि सरसों के दाने में उन्मत्त हाथी बाँधे हुए हैं; सिंहीं के साथ मच्छर युद्ध करते हैं; कमल के डोड़े में सुमेरु पर्वत आया है; कमल पर बैठकर भ्रमर रस पान कर गया और स्वप्न में मेघ गर्जता है, चित्रामणि के मोर नाचते हैं और जाग्रत की मूर्ति के ऊपर लिखा हुआ मोर मेघ को गर्जता देखके नृत्य करता है । जैसे ये सब असम्भव वार्ता हैं वैसे ही तुम्हारा कहना मुझको असम्भव भासता है । देवी बोली, हे लीले! यह मैंने तुझसे झूठ नहीं कहा । हमारा कहना कदाचित् असत् नहीं, क्योंकि यह आदि परमात्मा की नीति है कि महापुरुष असत् नहीं कहते । हम तो धर्म के प्रतिपादन करनेवाली हैं; जहाँ धर्म की हानि होती है वहाँ हम धर्म प्रतिपादन करती हैं और जो हम धर्म का प्रतिपादन न करें तो धर्म को और कैसे मानें । हे लीले! जैसे सोये हुए के स्वप्न में त्रिलोकी भास आती है । सो अन्तःकरण में ही होता है और स्वप्न से जाग्रत होती है वैसे ही मरना भी जान । जब जहाँ मृतक होता है वही जीव पुर्यष्टक आकाश रूप हो जाता है और फिर वासना के अनुसार उसको जगत् भास आता है । जैसे स्वप्न में जगत् भास आता है वह क्या रूप है? आकाश रूप ही है वैसे ही इसको भी जान । हे लीले! यह सब जगत् तेरे उसी अन्तःपुर में है, क्योंकि

जगत् चिताकाश में स्थित है । जैसे आदर्श में प्रतिबिम्ब होता है वैसे ही चित्त में जगत् है और आकाश रूप है, इससे जो चित्त अन्तःपुरमें हुआ तो जगत् भी हुआ । हे लीले! यह जगत् जो तुझको भासता है सो आकाशरूप है । जैसे स्वप्न और संकल्प नगर और कथा के अर्थ भासते हैं वैसे ही यह जगत् भी है और जैसे मृगतृष्णा का जल भासता है वैसे ही यह जगत् भी जान । हे लीले! वास्तव में कोई पदार्थ उपजा नहीं भ्रम से सब भासते हैं । जैसे स्वप्न में स्वप्नान्तर फिर उससे और स्वप्ना दीखता है वैसे ही तुमको भी यह सृष्टि भ्रम से भासी है । हे लीले! यह जगत् आत्मरूप है । जहाँ चिद्अणु है वहाँ जगत् भी है परन्तु क्या रूप है, आभासरूप है । जैसे वह आकाशरूप है वैसे ही यह जगत् भी आकाशरूप है । जिस प्रकार यह चेतता है उस प्रकार हो भासता है इससे संकल्पमात्र है । जैसे स्वप्नपुर भासता है और जैसे संकल्पनगर होता है वैसे ही यह जगत् है । जैसे मरुस्थल की नदी के तरंग भासते हैं वैसे ही यह जगत् भासता है । इससे कल्पना त्याग दो । इतना सुन फिर लीला ने पूछा, हे देवि! उस वशिष्ठ ब्राह्मण को मरे आठ दिन बीते हैं और हमको यहाँ साठ सहस्र वर्ष बीते है यह वार्ता कैसे सत् जानिये? थोड़े काल में बड़ा काल कैसे हुआ? देवी बोली, हे लीले! जैसे थोड़े देश में बहुत देश आते हैं वैसे ही काल में बहुत काल भी आता है । अहन्ता ममता आदिक जितना कुछ जगत् है सो आभासमात्र है उसे क्रम से सुन । जब जीव मृतक होता है तब मूर्छा होती है फिर मूर्छा से चैतन्यता फुर आती है, उसमें यह भासता है कि यह आधार है तो यह आधेय है; यह मेरा हाथ है; यह मेरा शरीर है; यह मेरा पिता है; इसका मैं पुत्र हूँ; अब इतने वर्ष का मैं हुआ; ये मेरे बान्धव हैं; इनके साथ मैं स्नेह करता हूँ; यह मेरा गृह है और यह मेरा कुल चिरकाल का चला आता है । मरने के अनन्तर इतने क्रम को देखता है । हे लीले! जिस प्रकार वह देखता है वैसे ही यह भी जान । एक क्षण में और का और भासने लगता है । यह जगत् चैतन्य का किञ्चन है । जैसे चेतन संवित् में चैत्यता होती है वैसे ही यह जगत् भी भासता है और जैसे स्वप्न में दृष्टा, दर्शन, दृश्य तीनों भासते हैं वैसे ही आत्मसत्ता में यह जगत् किञ्चन होता है और भ्रम से भासता है, वास्तव में नानात्व कुछ हुआ नहीं । जैसे स्वप्न में कारण बिना नाना प्रकार का जगत् भासता है वैसे ही परलोक में नाना प्रकार का जगत् कारण बिना ही भासता है सो आकाशरूप है और मनके भ्रम से भासता है वैसे ही यह जगत् भी मन के भ्रम से भासता है । स्वप्न जगत्, परलोक जगत् और जाग्रत जगत् में भेद कुछ नहीं । जैसे वह भ्रममात्र है वैसे ही यह भ्रममात्र है- वास्तव में कुछ उपजा नहीं । जैसे समुद्र में तरंग कुछ वास्तव नहीं वैसे ही आत्मा में जगत् कुछ वास्तव नहीं असत् ही सत् की नाई भासता है । किसी कारण से उपजा नहीं इस कारण अविनाशी है । हे लीले! जैसे चयोन्मुखत्व हुए चेतन आकाशरूप भासता है वैसे ही चैत्यता में चेतन आकाश है क्योंकि कुछ हुआ नहीं । जैसे समुद्र में तरंग होता है तो वह तरंग कुछ जल से इतर है नहीं, जल ही है, वैसे ही आत्मा में जगत् कुछ इतर नहीं बल्कि जल में तरंग की नाई भी आत्मा में जगत् नहीं । जैसे शश के शृंग असत् हैं वैसे ही जगत् असत् है-कुछ उपजा नहीं । हे लीले! जब जीव मृतक होता है तब उसको देश, काल, क्रिया, उत्पत्ति, नाश, कुटुम्ब, शरीर, वर्ष आदिक नानारूप

भासते हैं पर वे सब आभास रूप हैं । जिस प्रकार क्षण क्षण में इतने भास आते हैं वैसे ही कारण बिना यह जगत् भासित है तो दृश्य और दृष्टा भी कोई न हुआ । देश काल क्रिया द्रव्य इन्द्रियाँ, प्राण, मन और बुद्धि सब भ्रम से भासते हैं । आत्मा उपाधि से रहित आकाशरूप है और उसके प्रमोद से जगत्भ्रम उदय हुआ है । हे लीले! भ्रम में क्या नहीं होता? जैसे एक रात्रि में हरिश्चन्द्र को द्वादशवर्ष भ्रम से भासे थे वैसे ही यहाँ भी थोड़े काल में बहुत काल भासा है । दो अवस्था में और का और भासता है । स्वप्न में और का और भासता है और उन्मत्तता से भी और का और भासता है । अभोक्ता आपको भोक्ता मानता है और भ्रम से उत्साह और शोक को इकट्ठा देखता है । किसी को उत्साह होता है और स्वप्न में मृतक भाव शोक को देखता है । बिछड़ा हुआ स्वप्न में मिला देखता है और जो मिला सो आपको बिछुड़ा जानता है । काल और है । भ्रम करके और काल देखता है । इससे देखो यह सब भ्रमरूप है । जैसे भ्रम से यह भासता है वैसे ही यह जगत् भी भ्रम से भासता है परन्तु ब्रह्म से इतर कुछ नहीं । इससे न बन्ध है और न मोक्ष है । जैसे मिरच में तीक्ष्णता है वैसे ही आत्मा में जगत् है । जैसे थम्भे में पुतलियाँ होती हैं वैसे ही आत्मा में जगत् है और जैसे थम्भे में पुतलियाँ कुछ हुई नहीं ज्यों का त्यों है और शिल्पी के मन में पुतलियाँ हैं वैसे ही ब्रह्म में जगत् है नहीं, पर मनरूपी शिल्पी में जगत्रूपी पुतलियाँ कल्पी है । आत्मसत्ता ज्यों की त्यों नित्य, शुद्ध, अज, अमर अपने आपमें स्थित है ।

देवी बोली हे लीले! जब जीव को मृत्यु से मूर्छा होती है तब शीघ्र ही उसको फिर कुछ जन्म और देश, काल, क्रिया, द्रव्य और अपना परिवार आदि नाना प्रकार का जगत् भास आता है पर वास्तव में कुछ नहीं -स्मृति भी असत् है । एक स्मृति अनुभव से होती है और एक स्मृति अनुभव बिना भी होती है पर दोनों स्मृति मिथ्या हैं । जैसे स्वप्न में अपना देह देखता है तो वह अनुभव असत् है, क्योंकि वह कुछ अपने मरने की स्मृति से नहीं भासा और उस मरण की स्मृति भौ असत् है । स्वप्न में कोई पदार्थ देखा तो जाग्रत में-उसको स्मरण करना भी असत् है, क्योंकि वास्तव में कुछ हुआ नहीं । इससे यह जगत् अकारणरूप है और जो है सो चिदाकाश ब्रह्मरूप है । न कुछ विदूरथ की सृष्टि सत् है और न यह सृष्टि सत् है-सब संकल्पमात्र है । इतना सुन लीला ने पूछा हे देवि! जो यह सृष्टि भ्रममात्र है तो वह जो विदूरथ की सृष्टि है सो इस सृष्टि के संस्कार से हुई है और यह सृष्टि उस ब्राह्मण और ब्राह्मण की स्मृति संस्कार से हुई है तो ब्राह्मण और ब्राह्मणी की सृष्टि किसकी स्मृति से हुई है । देवी बोली, हे लीले! वह जो वशिष्ठ ब्राह्मण की सृष्टि है सो ब्राह्मण के संकल्प से हुई और ब्राह्मण ब्रह्मा में फुरा है, परन्तु वास्तव में ब्रह्मा भी कुछ नहीं हुआ तो उसको सृष्टि क्या कहूँ यह जितना कुछ सृष्टि है सो उसी ब्राह्मण के मन्दिर में है, वास्तव से कुछ हुई नहीं सब संकल्परूप है और मन के फुरने से भासती है । जैसे जैसे संकल्प फुरता है वैसे होकर भासता है । यह सृष्टि जो तेरे भर्ता को भासि आई है वह संकल्प से भासि आई है । थोड़े काल में

बहुत भ्रम होकर भासता है । लीला ने पूछा, हे देवि! जहाँ ब्राह्मण को मृतक हुए आठ दिन व्यतीत हुए हैं उस सृष्टि को हम किस प्रकार देखें? देवी बोली, हे लीले! जब तू योगाभ्यास करे तब देखे । अभ्यास बिना देखने की सामर्थ्य न होगी, क्योंकि वह सृष्टि चिदाकाश में फुरती है । जब तू चिदाकाश में अभ्यास करके प्राप्त होगी तब तुझ को सब सृष्टि भासि आवेगी । वह जो सृष्टि है सो और के संकल्प में है जब उसके संकल्प में प्रवेश करे तो उसकी सृष्टि भासे, अन्यथा नहीं भासती । जैसे एक के स्वप्न को दूसरा नहीं जान सकता वैसे ही और की सृष्टि नहीं भासती । जब तू अन्तवाहकरूप हो तब वह सृष्टि देखे । जब तक आधिभौतिक स्थूल पञ्चतत्त्वों के शरीर में अभ्यास है तब तक उसको न देख सकेगी, क्योंकि निराकार को निराकार ग्रहण करता है आकार नहीं ग्रहण कर सकता । इससे यह आधिभौतिक देह भ्रम है इसको त्यागकर चिदाकाश में स्थित हो । जैसे पक्षी आलय को त्याग कर आकाश में उड़ता है और जहाँ इच्छा होती है वहाँ चला जाता है वैसे ही चित्त को एकाग्र करके स्थूल शरीर को त्याग दे और योग अभ्यास कर आत्मसत्ता में स्थित हो । जब आधिभौतिक को त्यागकर अभ्यास के बल से चिदाकाश में स्थित होगी तब आवरण से रहित होगी और फिर जहाँ इच्छा करेगी वहाँ चली जावेगी और जो कुछ देखा चाहेगी वह देखेगी । हे लीले! हम सदा उस चिदाकाश में स्थित हैं । हमारा वपु चिदाकाश है इस कारण हमको कोई आवरण रोक नहीं सकता हमसे उदारों की सदा स्वरूप में स्थिति है और हम सदा निरावरण हैं कोई कार्य हमको आवरण नहीं कर सकता, हम स्वइच्छित हैं-जहाँ जाया चाहें वहाँ जाते हैं और सदा अन्तवाहक रूप हैं । तू जब तक आधिभौतिकरूप है तब तक वह सृष्टि तुझको नहीं भासती और तू वहाँ जा भी नहीं सकती । हे लीले! अपना ही संकल्प सृष्टि है । उसमें जब तक चित्त की वृत्ति लगी है उस काल में यह अपना शरीर ही नहीं भासता तो और का कैसे भासे? जब तुझको अन्तवाहकता का दृढ़ अभ्यास हो और आधिभौतिक स्थूल शरीर की ओर से वैराग्य हो तब आधिभौतिकता मिट जावेगी, क्योंकि आगे ही सब सृष्टि अन्तवाहकरूप है पर संकल्प की दृढ़ता से आधिभौतिक भासती है । जैसे जल दृढ़ शीतलता से बरफरूप हो जाता है वैसे ही अन्तवाहकता से आधिभौतिक हो जाते हैं-प्रमादरूप संकल्प वास्तव में कुछ हुआ नहीं । जब वही संकल्प उलट कर सूक्ष्म अन्तवाहक की ओर आता है तब आधिभौतिकता मिट जाती है और अन्तवाहकता आ उदय होती है । जब इस प्रकार तुझको निरावरणरूप उदय होगा तब देखने में और जानने में कुछ यत्न न होगा । साकार से निराकार का ग्रहण नहीं कर सकता । निराकार की एकता निराकार से ही होती है-अन्यथा नहीं होती । जब तू अन्तवाहकरूप होगी तब उसकी संकल्प सृष्टि में तेरा प्रवेश होगा । हे लीले! यह जगत् संकल्परूप भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ हुआ नहीं, एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है और द्वैत कुछ नहीं । लीला बोली, हे देवि! जो एक अद्वैत आत्मसत्ता है तो कलना यह दूसरी वस्तु क्या है सो कहो? देवी बोली, हे लीले । जैसे स्वर्ण में भूषण कुछ वस्तु नहीं, जैसे सीपी में रूपा दूसरी वस्तु कुछ नहीं और जैसे रस्सी में सर्प दूसरी वस्तु नहीं वैसे ही कलना भी कुछ दूसरी वस्तु नहीं है एक अद्वैत आत्मसत्ता ज्यों की त्यों स्थित है; उसमें नानात्व भासता है पर वह भ्रममात्र है-वास्तव

में अपना आप एक अनुभव सत्ता है । इतना सुन फिर लीला ने पूछा, हे देवि! जो एक अनुभवसत्ता और मेरा अपना आप है तो मैं इतना काल क्यों भ्रमती रही? देवी बोली, हे लीले! तू अविचाररूप भ्रम से भ्रमती रही है । विचार करने से भ्रम शान्त हो जाता है । भ्रम और विचार भी दोनों तेरे ही स्वरूप हैं और तुझसे ही उपजे हैं । जब तुझको अपना विचार होगा तब भ्रम निवृत्त हो जावेगा । जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही विचार से द्वैतभ्रम नष्ट हो जावेगा और जैसे रस्सी के जाने से सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है और सीप के जाने से रूप भ्रम नष्ट हो जाता है वैसे ही आत्मा के जाने से आधिभौतिक भ्रम शान्त हो जावेगा । जब दृश्य का अत्यन्ताभाव जान के दृढ़ वैराग्य करिये और आत्म स्वरूप का दृढ़ अभ्यास हो तब आत्मा साक्षात्कार होकर भ्रम शान्त हो जाता है और इसी से कल्याण होता है । हे लीले! जब दृश्य जगत् से वैराग्य होता है तब वासना क्षय हो जाती है और शान्ति प्राप्त होती है । हे लीले! तू आत्मसत्ता का अभ्यास कर तो तेरा जगत्भ्रम शान्त हो जावेगा । भ्रम भी कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि देह आदिक भ्रम भी कुछ नहीं हुआ । जैसे रस्सी के जाने से साँप का अभाव विदित होता है वैसे ही आत्मा के जाने से देहादिक का अत्यन्त अभाव हो जाता है ।

देवी बोली, हे लीले! जितने कुछ शरीर तुझको भासते हैं सो सब स्वप्नपुर की नाई हैं । जैसे स्वप्न में शरीर भासता है, पर जब निज स्वरूप में स्मृति होती है तब स्वप्न का शरीर सत्य नहीं भासता । जैसे संकल्प के त्यागने से संकल्परूप शरीर नहीं भासता । वैसे ही बोधकाल में यह शरीर भी नहीं भासता! जैसे मनोराज के त्यागने से मनोराज का शरीर नहीं भासता वैसे ही यह शरीर भी नहीं भासता । जब स्वरूप का ज्ञान होगा तब यह भी वास्तव न भासेगा । जैसे स्वरूप स्मरण होने पर स्वप्न शरीर शान्त होता है वैसे ही वासना के शान्त होने पर जाग्रत शरीर भी शान्त हो जाता है । जैसे स्वप्न का देह जागने से असत् होता है वैसे ही जाग्रत शरीर की भावना त्यागने से यह भी असत् भासता है । इसके नष्ट होने पर अन्तवाहक देह उदय होवेगा । जैसे स्वप्न में राग द्वेष होता है और जब पदार्थों की वासना बोध से निर्वीज होती है तब उनसे मुक्त होता है वैसे ही जिस पुरुष की वासना जाग्रत पदार्थों में नष्ट हुई है सो पुरुष जीवन्मुक्त पद को प्राप्त होता है । और यदि उसमें फिर भी वासना दृष्ट आवे तो वह वासना भी निर्वासना है । सो सर्व कल्पनाओं से रहित है उसका नाम सत्तासामान्य है । हे लीले! जिस पुरुष ने वासना रोकी है और ज्ञाननिद्रा से आवर्या हुआ है उसको सुषुप्तिरूप जान । उसकी वासना सुषुप्ति है और जिसकी वासना प्रकट है और जाग्रतरूप से विचरता है उसको अधिक मोह से आवर्या जानिये । जो पुरुष चेष्टा करता दृष्टि आता है और जिसकी अन्तःकरण की वासना नष्ट हुई है उसको तुरिया जान । हे लीले! जो पुरुष प्रत्यक्ष चेष्टा करता है और अन्तःकरण की वासना से रहित है वह जीवन्मुक्त है । जिस पुरुष का चित सत्पद को प्राप्त हुआ है उसको जगत् की वासना नष्ट हो

जाती है और जो वासना फुरती भासती है तो भी सत्य जानके नहीं फुरती । जब शरीर की वासना नष्ट होती है तब आधिभौतिकता नष्ट हो जाती है और अन्तवाहकता आन प्राप्त होती है । जैसे बरफ की पुतली सूर्य के तेज से जलरूप हो जाती है वैसे ही आधिभौतिकता क्षीण होकर अन्तवाहकता प्राप्त होती है । जब आन्तवाहकता प्राप्त होती है तब शरीर आभासमय चित्‌रूप होता है और अपने जन्मान्तरों से व्यतीत सृष्टिका सब ज्ञान हो आता है । तब वह जहाँ जाने की इच्छा करता है वहाँ जा प्राप्त होता है और यदि किसी सिद्ध के मिलने अथवा किसी के देखने की इच्छा करे सो सब कुछ सिद्ध होता है, परन्तु अन्तवाहक बिना शक्ति नहीं होती जब इस देह से तेरा अहंभाव उठेगा तब सब जगत् तुझको प्रत्यक्ष भासेगा । हे लीले! जब आधिभौतिक शरीर की वासना नष्ट होती है तब अन्तवाहक देह होती है और जब अन्तवाहक में वृत्ति स्थित होती है तब और के संकल्प की सृष्टि भासती है । इससे तू वासना घटाने का यत्न कर । जब वासना नष्ट होगी तब तू जीवन्मुक्त पदको प्राप्त होगी । हे लीले! जबतक तुझको पूर्ण बोध नहीं प्राप्त होगा तब तू अपनी इस देह को यहाँ स्थापन कर वह सृष्टि चलकर देख । जैसे अन्तवाहक शरीर से मांसमय स्थूल देह का व्यवहार नहीं सिद्ध होता वैसे ही स्थूल देह से सूक्ष्म कार्य नहीं होता । इससे तू अन्तवाहक शरीर का अभ्यास कर । जब अभ्यास करेगी तब वह सृष्टि देखने को समर्थ होगी हे लीले! जैसे अनुभवमें स्थित होती है सो मैंने तुझसे कही । यह वार्ता बालक भी जानते हैं कि यह वर और शाप की नाई नहीं है । जब अपना आप ही अभ्यास करेगी तब बोध की प्राप्ति होगी । हे लीले! सब जगत् अन्तवाहकरूप है अर्थात् संकल्परूप है अर्थात् संकल्परूप और अबोध रूप है । संकल्प के अभ्यास से आधिभौतिक उत्पन्न हुआ है, इससे संसार की वासना दृढ़ हुई है और जन्म मरण आदि विकार चित्त में भासते हैं । जीव न मरता है और न जन्मता है । जैसे स्वप्न में जन्म मरण भासते हैं और जैसे संकल्प से भ्रम भासता है वैसे ही जन्म मरण भ्रम से भासता है । जब तुम आत्मपद का अभ्यास करोगी तब यह विकार मिट जावेगा और आत्मपद की प्राप्ति होगी । लीला ने पूछा हे देवि! तुमने मुझसे परम निर्मल उपदेश किया है जिसके जानने से दृश्य विसूचिका निवृत्त होती है, पर वह अभ्यास क्या है, बोध का साधन कैसे होता है, अभ्यास पुष्ट कैसे होता है और पुष्ट होने से फल क्या होता है? देवी बोली, हे लीले! जो कुछ कोई करता है सो अभ्यास बिना सिद्ध नहीं होता । सबका साधक अभ्यास है । इससे तू ब्रह्म का अभ्यास कर । हे लीले! चित्त में आत्मपद की चिन्तना, कथन, परस्पर बोध, प्राणों की चेष्टा और आत्मपद के मनन को ब्रह्माभ्यास कहते हैं! बुद्धि मान् चिन्तना किसको कहते हैं सो भी सुन । शास्त्र और गुरु से जो महावाक्य श्रवण किये हैं उनको युक्तिपूर्वक, विचारना और कथन करना चिन्तना कहाता है । शिष्यो को उपदेश करना, परस्पर बोध करना और निर्णय करके निश्चय करना, इन तीनों के परायण रहने को बुद्धिमान् ब्रह्म अभ्यास कहते हैं । जिन पुरुषों के पाप अन्त को प्राप्त हुए हैं और पुण्य बचे हैं वे रागद्वेष से मुक्त हुये हैं, उनको तू ब्रह्मसेवक जान । हे लीले! जिन पुरुषों को रात्रि दिन अध्यात्म शास्त्र के चिन्तन में व्यतीत होते हैं और वासना को नहीं प्राप्त होते उनको

ब्रह्माभ्यासी जान-वे ब्रह्माभ्यास में स्थित हैं । हे लीले! जिनकी भोगवासना क्षीण हुई है और संसार के अभाव की भावना करते हैं वे विरक्तचित्त महात्मा पुरुष भव्यमूर्ति शीघ्र ही आत्मपद को प्राप्त होते हैं और जिनकी बुद्धि वैराग्यरूपी रंग से रँगी है और आत्मानन्द की ओर वृत्ति धावती है ऐसे उदार आत्माओं को ब्रह्माभ्यासी कहते हैं । हे लीले! जिन पुरुषोंने जगत् का अत्यन्त अभाव जाना है कि यह आदि से उत्पन्न नहीं हुआ और दृश्य को असत् जानके त्यागते हैं, परमतत्त्व को सत्य जानते हैं और इस युक्ति से अभ्यास करते हैं वे ब्रह्माभ्यासी कहते हैं । जिस पुरुष को दृश्य की असम्भवता का बोध हुआ है और इस बुद्धि का भी जो अभाव करके परमात्मपद में प्राप्ति करते हैं सो ब्रह्माभ्यासी कहाते हैं । हे लीले! दृश्य के अभाव जाने बिना राग और द्वेष निवृत्त नहीं होते । रागद्वेष बुद्धि इस लोक में दुःखों को प्राप्त करती है और जिसको दृश्य की असम्भव बुद्धि प्राप्त हुई है उसको यज्ञ अर्थात् परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त होता है । जब उस पद में दृढ़ अभ्यास होता है तब परमानन्द निर्वाण पद को प्राप्त होता है और जो जगत् के अभाव के निमित्त यत्न करता है वह प्राकृत है । हे लीले! बोध का साधन अभ्यास है, अभ्यास शास्त्र से होता है, प्रयत्न से पुष्ट होता है और पुष्ट होने से आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है । हे लीले! जिनको ब्रह्माभ्यासी वा ब्रह्म के सेवक कहते हैं वे तीन प्रकार के हैं-एक उत्तम दूसरे मध्यम और तीसरे प्रकृत । उत्तम अभ्यासी वह है जिसको बोधकला उत्पन्न हुई है और दृश्य का असम्भव बोध हुआ है जिसको दृश्य का असम्भव बोध हुआ है पर बोधकला नहीं उपजी और वह उसके अभ्यास में है वह मध्यम है । जिसको दृश्य का असम्भव बोध नहीं हुआ और सदा यही हृदय में रहता है कि दृश्य का असम्भव हो यह प्राकृत है । इससे जिस प्रकार मैंने तुझको अभ्यास कहा है वैसे ही अभ्यास करने से तू परमपद को प्राप्त होगी। इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे अज्ञानरूपी निद्रा में जीव शयन कर रहा है, उससे जगत् को नाना प्रकार से देखता है वैसे ही अविद्यारूपी निद्रा में विवेकरूपी वचनों के जल की वर्षा करके जब देवी ने लीला को जगाया तब उसकी अज्ञानरूपी निद्रा ऐसे नष्ट हो गई जैसे शरत्काल में मेघ का कुहड़ा नष्ट हो जाता है । वाल्मीकिजी बोले, जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तो सायंकाल का समय हुआ और सर्व सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई और जब सूर्य की किरणें उदय हुई तब फिर सब आ स्थित हुए ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार अर्द्धरात्रि के समय देवी और लीला का संवाद हुआ । उस समय सब लोग और सहेलियाँ बाहर पड़ी सोती थीं और लीला का भर्ता फूलों में दबा हुआ था । उसके पास दिव्य वस्त्र पहिरे हुए चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दर देवियाँ सब कलनाओं को त्यागके और अंगों को संकोचकर ऐसी समाधि में स्थित भईं मानो रत्न के थम्भ से पुतलियाँ उत्कीर्ण किये स्थित हैं । अन्तःपुर भी उनके प्रकाश से प्रकाशमान हुआ और वे ऐसी शोभा देती

थीं मानो कागज के ऊपर मूर्तियाँ लिखी हैं । इस प्रकार सब दृश्य कल्पना को त्याग के निर्विकल्प समाधि में स्थित हुई । जैसे कल्पवृक्ष की लता दूसरी ऋतु के आने से अगले रस को त्याग के दूसरी ऋतु के रस को अंगीकार करती है वैसे ही वे सब दृश्यभ्रम को त्याग के आत्मतत्त्व में स्थित हुई और अहंसा से आदि से लेकर उनका दृश्यभ्रम शान्त हो गया । दृश्य रूपी पिशाच के शान्त होने पर जैसे शरत्काल का आकाश निर्मल होता है वैसे ही वे निर्मलभाव को प्राप्त हुई । हे रामजी! यह जगत् शश के शृंग की नाई असत् है । जो आदि न हो अन्त भी न रहे और वर्तमान में दृष्टि आवे वह असत् जानिये । जैसे मृगतृष्णा का जल असत्य है वैसे ही यह जगत भी असत्य है । ऐसे जब स्वभावसत्ता उनके हृदय में स्थित हुई तब अन्य सृष्टि के देखने का जो संकल्प था सो आन फुरा । उस फुरने से वे आकाशरूप देह से चिदाकाश में उड़ीं और सूर्य और चन्द्रमा के मण्डलों को लाँघकर दूर से दूर जाकर अन्त योजनपर्यन्त स्थान लाँघे । फिर भूतों की सृष्टि देखी उसमें प्रवेश किया ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार परस्पर हाथ पकड़कर वे दूर से दूर गईं मानो एक ही आसन पर दोनों चली जाती हैं । जहाँ मेघों के स्थान और अग्नि और पवन के वेग नदियों की नाई चलते थे और जहाँ निर्मल आकाश था वहाँ से भी आगे गईं । कहीं चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश ही न था और कहीं चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशमान थे; कहीं देवता विमानों पर आरूढ़ थे; कहीं सिद्ध उड़ते थे और कहीं विद्याधर, किन्नर और गन्धर्व गान करते थे । कहीं सृष्टि उत्पन्न होती; कहीं प्रलय होती और कहीं शिखाधारी तारे उपद्रव करते उदय हुए थे । कहीं प्राण अपने व्यवहार में लगे हुए; कहीं अनेक महापुरुष ध्यान में स्थित; कहीं हस्ति, पशु-पक्षी और देत्य-डाकिनी विचरते और योगनियाँ लीला करती थीं । कहीं अन्धे गँगे रहते थे, कहीं गीध पक्षी; सिंह और घोड़े के मुखवाले गण विचरते और कहीं गीध पक्षी वरुण, कुबेर, इन्द्र, यमादिक लोकपाल बैठे थे । कहीं बड़े पर्वत सुमेरु, मंदराचल आदिक स्थित कहीं अनेक योजन पर्यन्त वृक्ष ही चले जाते; कहीं अनेक योजन पर्यन्त अविनाशी प्रकाश; कहीं अनेक योजन पर्यन्त अविनाशी अन्धकार; कहीं जल से पूर्ण स्थान; कहीं सुन्दर पर्वतों पर गंगा के प्रवाह चले जाते और कहीं सुन्दर बगीचे, बावड़ी ताल और उनमें कमल लगे हुए थे । कहीं भूत भविष्यत् होता, कहीं कल्पवृक्षों के वन, कहीं अनन्त चिन्तामणि; कहीं शून्य स्थान; कहीं देवता और देत्यों के बड़े युद्ध होते और नक्षत्रचक्र फिरते और कहीं प्रलय होता था । कहीं देवता विमानों में फिरते ; कहीं स्वामिकार्तिक के रक्खे हुए मोरों के समूह विचरते; कहीं कुक्कुट आदि पक्षी विद्याधरों के वाहन विचरते और कहीं यम के वाहन महिषों के समूह विचरते थे । कहीं पाषाण संयुक्त पर्वत; कहीं भैरव के गण नृत्य करते; कहीं विद्युत चमकती; कहीं कल्पतरु कहीं मन्द-मन्द शीतल पवन सुगन्ध समेत चलती और कहीं पर्वत रत्न और मणि शोभते थे । निदान इसी प्रकार अनेक जगज्जाल उनदेवियों ने देखे । जीवरूपी

मच्छड़ त्रिलोकरूपी गूलर के फलों में देखे । इसके अनन्तर उन्होंने भूमण्डल को देख के महीतल में प्रवेश किया ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब देवियों ने भूतल ग्राम में आकर ब्रह्माण्ड खप्परमें प्रवेश में किया । वह ब्रह्माण्ड त्रिलोकरूपी कमल है और उसकी अष्ट पंखुड़ियाँ हैं । उसमें पर्वतरूपी डोडा है; चेतनता सुगन्ध है और नदियाँ समुद्र अम्बुकगण हैं । जब रात्रिरूपी भँवरे उस पर आन विराजते हैं तब वे कमल सकुचाय जाते हैं वे पातालरूपी कीचड़ में लगे हैं; पत्ररूपी मनुष्य देवता हैं; दैत्य राक्षस उसके कण्टक हैं और डोडा उसका शेषनाग है । जब वह हिलता है तब भूचाल होता है और दिनकर से प्रकाशता है । इसका विस्तार इस प्रकार है कि एक लाख योजन जम्बूद्वीप है और उसके परे दुगुना खारा समुद्र है । जैसे हाथ का कंकण होता है वैसे ही उस जल से वह द्वीप आवरण किया है । उससे आगे उससे दुगुनी पृथ्वी है जिसका नाम कुशद्वीप है और उससे दूने घृत के समुद्र से वेष्टित है । उसके आगे उससे दूनी पृथ्वी का नाम क्रौंचद्वीप है वह अपने से दूने दधि के समुद्र से वेष्टित है । फिर शाल्मली द्वीप है और उससे दूना मधु का समुद्र उसके चारों ओर है । फिर प्लक्षद्वीप है उससे दूना इक्षुरस का समुद्र है । फिर उससे दूना पुष्करद्वीप है और उससे दूना मीठे जल का समुद्र उसे घेरे है । इस प्रकार सप्त समुद्र हैं । उससे परे दशकोटि योजन कञ्चन की पृथ्वी प्रकाशमान है और उससे आगे लोकालोक पर्वत हैं और उन पर बड़ा शून्य वन है । उससे परे एक बड़ा समुद्र है । समुद्र से परे दशगुणी अग्नि है; अग्नि से परे दशगुणी वायु है; वायु से परे दशगुणा आकाश है और आकाश से परे लक्ष योजन पर्यन्त घनरूप ब्रह्माण्ड का कन्ध है । उसको देख के दोनों फिर आईं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वहाँ से फिर उन्होंने वशिष्ठ ब्राह्मण और अरुन्धती का मण्डल, ग्राम और नगर को देखा कि शोभा जाती रही है । जैसे कमलों पर धूल की वर्षा हो और कमल की शोभा जाती रहे; जैसे वन को अग्नि लगे और वन लक्ष्मी जाती रहे; जैसे अगस्त्य मुनि ने समुद्र को पान कर लिया था और समुद्र की शोभा जाती रही थी; जैसे तेल और बाती के पूर्ण होने से दीपक के प्रकाश का अभाव हो जाता और जैसे वायु के चलने से मेघ का अभाव होता है वैसे ही ग्राम की शोभा का अभाव देखा । जो कुछ प्रथम शोभा थी सो सब नष्ट हो गई थी और दासियाँ रुदन करती थीं । तब लीला रानी को जिसने चिरकाल तप और ज्ञान का अभ्यास किया था; यह इच्छा उपजी कि मुझे और देवी को मेरे बान्धव देखें । तब लीला के सत्संकल्प से उसके

बान्धवों ने उनको देखकर कहा कि यह वनदेवी गौरी और लक्ष्मी आई हैं इनको इनको नमस्कार करना चाहिए । वशिष्ठ के बड़े पुत्र ज्येष्ठ शर्मा ने फूलों से दोनों के चरण पूजे और कहा, हे देवि! तुम्हारी जय हो । यहाँ मेरे पिता और माता थे, अब वह दोनों काल के वश स्वर्ग को गये हैं इससे हम बहुत शोकवान् हुए हैं । हमको त्रैलोक्य शून्य भासते हैं और हम सब रुदन करते हैं । वृक्षों पर जो पक्षी रहते थे सो भी उनको मृतक देख के वन को चले गये; पर्वत की कन्दरा से पवनमानों रुदन करता आता है, और नदी जो वेग से आती है और तरंग उछलते हैं मानों वह भी रुदन करते हैं । कमलों पर जो जल के कण हैं मानों कमलों के नयनों से रुदन करके जल चलता है और दिशा से जो उष्ण पवन आता है मानों दिशा भी उष्ण श्वासें छोड़ती है । हे देवियों! हम सब शोक को प्राप्त हुए हैं । तुम कृपा करके हमारा शोक निवृत्त करो, क्योंकि महापुरुषों का समागम निष्फल नहीं होता और उनका शरीर परोपकार के निमित्त है । हे रामजी! जब इस प्रकार ज्येष्ठ शर्माने कहा तब लीला ने कृपा करके उसके शिर पर हाथ रक्खा और उसके हाथ रखते ही उसका सब ताप नष्ट हो गया । और जैसे ज्येष्ठ आषाढ के दिनों में तपी हुई पृथ्वी मेघ की वर्षा होने से शीतल हो जाती है वैसे ही उसका अन्तःकरण शीतल हुआ । जो वहाँ के निर्धन थे वह उनके दर्शन करने से लक्ष्मीवान् होकर शान्ति को प्राप्त हुए और शोक नष्ट हो गया और सूखे वृक्ष सफल हो गये । इतना सुन राम जी बोले, हे भगवन्! लीला ने अपने ज्येष्ठ शर्मा को मातारूप होकर दर्शन क्यों न दिया, इसका कारण मुझसे कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता में जो स्पन्द संवेदन हुई है सो संवेदन भूतों का पिण्डाकार हो भासती है और वास्तव में आकाश रूप है भ्रान्ति से पृथ्वी आदिक भूत भासते हैं । जैसे बालक को छाया में भ्रम से वैताल भासता है वैसे ही संवेदन के फुरने से पृथिव्यादिक भूत भासते हैं । जैसे स्वप्न में भ्रम से पिण्डाकार भासते हैं और जगने पर आकाशरूप भासते हैं वैसे भ्रम के नष्ट होने पर पृथ्वी आदि भूत आकाशरूप भासते हैं । जैसे स्वप्न के नगर स्वप्नकाल में अर्थाकार भासते हैं और अग्नि जलाती है पर जागने से सब शून्य होजाती है वैसे ही अज्ञान के निवृत्त होने से यह जगत् आकाशरूप हो जाता है । जैसे मूर्छा में नाना प्रकार के नगर; परलोक जगत्; आकाश में तरुवरे और मुक्तमाला और नौका पर बैठे तट के वृक्ष चलते भासते हैं वैसे ही यह जगत् भ्रम से अज्ञानी को भासता है और ज्ञानवान् को सब चिदाकाश भासता है-जगत् की कल्पना कोई नहीं फुरती । इससे लीला उसको पुत्रभाव और अपने को मातृभाव कैसे देखती । उसका अहं और मम भाव नष्ट हो गया था । जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है वैसे ही लीला का अज्ञानभ्रम नष्ट हो गया था और सब जगत् उसको चिदाकाश भासता था । इस कारण वह अपने को माताभाव न जानती भई । जो उसमें कुछ ममत्व होता तो उसको माताभाव से देखती, परन्तु उसको यह अहं ममभाव न था इस कारण देवीरूप में दिखाया और शिर पर हाथ इसलिए रक्खा कि सन्तों का दयालु स्वभाव है । माता पुत्र की कल्पना उसमें कुछ न थी । केवल आत्मारूप जगत् उसको भासता था ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर वहाँ से देवी और लीला दोनों अन्तर्धान हो गईं । तब वहाँ के लोग कहने लगे कि वनदेवियों ने हमारे बड़ी कृपा करके हमारे दुःख नाश किये और अन्तर्धान हो गईं । हे रामजी! तब दोनों आकाश में आकाशरूप अन्तर्धान हुईं और परस्पर संवाद करने लगीं । जैसे स्वप्न में संवाद होता है वैसे ही उनका परस्पर संवाद हुआ । देवी ने कहा, हे लीले! जो कुछ जानना था सो तूने जाना और जो कुछ देखना था सो भी देखा-यह सब ब्रह्म की शक्ति है । और जो कुछ पूछना हो सो पूछो । लीला बोली, हे देवि! मैं अपने भर्ता विदूरथ के पास गई तो उसने मुझे क्यों न देखा और मेरी इच्छा से ज्येष्ठशर्मा आदि ने मुझे क्यों देखा इसका कारण कहां? देवी बोली, हे लीले! तब तेरा द्वैतभ्रम नष्ट न हुआ था और अभ्यास करके अद्वैत को न प्राप्त हुई थी । जैसे धूपमें छाया का सुख नहीं अनुभव होता वैसे ही तुझको अद्वैत का अनुभव न था । हे लीले! जैसे ऋतु का फल मधुर होता है । जैसे ज्येष्ठ आषाढ़ विदित हो और वर्षा नहीं आई वैसे ही तू थी-अर्थात् संसारमार्ग को लंघी थी पर अद्वैत तत्त्व को न प्राप्त हुई थी इससे आत्मशक्ति तुझको न प्रत्यक्ष हुई थी । आगे तेरा सत्संकल्प प हुआ है । अब तैने सत्संकल्प किया है कि तुझको ज्येष्ठशर्मा देखे इसी से वे सब तुझको देखते भये । अब तू विदूरथ के निकट जावेगी तो तेरे साथ ऐसा ही व्यवहार होगा । लीला बोली, हे देवि! इस मण्डप आकाश में मेरा भर्ता वशिष्ठ ब्राह्मण हुआ और फिर जब मृतक हुआ तब इसी लोक मण्डप आकाश में उसको पृथ्वी लोक फुरि आया, जिससे पद्म राजा हो उसने चिरकाल पर्यन्त चारों द्वीपों का राज्य किया और जब फिर मृतक हुआ तब इसी मण्डप आकाश में उसको जगत् भासित होकर पृथ्वीपति हुआ उसका नाम विदूरथ हुआ । हे देवि! इसी मण्डप आकाश में जर्जरीभाव और जन्म मरण हुआ और अनन्त ब्रह्माण्ड इसमें स्थित हैं । जैसे सम्पुट में सरसों के अनेक दाने होते हैं वैसे ही इसमें सब ब्रह्माण्ड मुझको समीप ही भासते हैं और भर्ता की सृष्टि भी मुझको अब प्रत्यक्ष भासती है अब जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं करूँ । देवी बोली, हे भूतल अरुन्धती! तेरे जन्म तो बहुत हुए हैं और अनेक तेरे भर्ता हुए हैं पर उन सबमें यह भर्ता इस मण्डप में है । एक वशिष्ठ ब्राह्मण था सो मृतक हो उसका शरीर तो भस्म हो गया है और फिर पद्मराजा हुआ उसका शव तेरे मण्डप में पड़ा है और तीसरा भर्ता संसार मण्डप में वसुधापति हुआ वह संसार समुद्र में भोगरूपी कलोल कर व्याकुल है । वह राजा में चतुर हुआ है पर आत्मपद से विमुख हुआ है । अज्ञान से जानता था कि मैं राजा हूँ; मेरी आज्ञा सबके ऊपर चलती है और मैं बड़े भोगों का भोगनेवाला और सिद्ध बलवान् हूँ । हे लीले! वह संकल्प विकल्परूपी रस्सी से बाँधा हुआ है । अब तू किस भर्ता के पास चलती है । जहाँ तेरी इच्छा हो वहाँ मैं तुझको ले जाऊँ । जैसे सुगन्ध को वायु ले जाता है वैसे ही मैं तुझको ले जाऊँगी । हे लीले! जिस संसार मण्डल को तू समीप कहती है सो वह चिदाकाश की अपेक्षा से समीप भासता है और सृष्टि की अपेक्षा से अनन्त कोटि योजनाओं का

भेद है । इसका वपु आकाशरूप है । ऐसी अनन्त सृष्टि पड़ी फुरती है । समुद्र और मन्दराचल पर्वत आदिक अनन्त हैं उनके परमाणु में अनन्त सृष्टि चिदाकाश के आश्रय फुरती है । चिद्गुण में रुचि के अनुसार सृष्टि बड़े आरम्भ से दृष्टि आती है और बड़े स्थूल गिरि पृथ्वी दृष्टि आते हैं पर विचारकर तौलिये तो एक चावल के समान भी नहीं होती । हे लीले! नाना प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण पर्वत भी दृष्टि आते हैं पर आकाशरूप है । जैसे स्वप्न में चैतन्य का किञ्चन नाना प्रकार जगत् दृष्टि आता है वैसे ही यह जगत् चैतन्य का किञ्चन है । पृथ्वी आदि तत्त्वों से कुछ उपजा नहीं । हे लीले! आत्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आप में स्थित है । जैसे नदी में नाना प्रकार के तरंग उपजते हैं और लीन भी होते हैं वैसे ही आत्मा में जगज्जाल उपजा और नष्ट भी हो जाता है, पर आत्मसत्ता इनके उपजने और लीन होने में एक रस है । यह सब केवल आभासरूप है वास्तव कुछ नहीं । लीला बोली हे माता! अब मुझको पूर्व की सब स्मृति हुई है । प्रथम मैंने ब्रह्मा से राजसी जन्म पाया और उससे आदि लेकर नाना प्रकार के जो अष्टशत जन्म पाये हैं वे सब मुझको प्रत्यक्ष भासते हैं प्रथम जो चिदाकाश से मेरा जन्म हुआ उसमें मैं विद्याधर की स्त्री भई और उस जन्म के कर्म से भूतल में आकर मैं दुःखी हुई। फिर पक्षिणी भई और जाल में फँसी और उसके अनन्तर भीलिनी होकर कदम्ब वन में विचरने लगी । फिर वनलता भई; वहाँ गुच्छे मेरे स्तन और पत्र मेरे हाथ थे । जिसकी पर्णकुटी में लता थी वह ऋषीश्वर मुझको हाथ से स्पर्श किया करता था इसमें मृतक होकर उसके गृह में पुत्री हुई । वहाँ जो मुझसे कर्म हो सो पुरुष ही का कर्म हो इसमें मैं बड़ी लक्ष्मी से सम्पन्न राजा हुई । वहाँ मुझसे दुष्टकर्म हुए इससे मैं कुछ रोगग्रसित बन्दरी होकर आठ वर्ष वहाँ रही । फिर मैं बैल हुई; मुझको किसी दुष्ट ने खेती के हल में जोड़ा और उससे मैंने दुःख पाया । फिर मैं भ्रमरी भई और कमलों पर जाकर सुगन्ध लेती थी । फिर मृगी होकर चिर पर्यन्त वन में विचरी । फिर एक देश का राजा भई और सौ वर्ष पर्यन्त वहाँ भोगे और फिर कछुये का जन्म लेकर, राजहंस का जन्म लिया । इसी प्रकार मैंने अनेक जन्मों को धारण करके बड़े कष्ट पाये । हे देवि! आठसौ जन्म पाकर मैं संसारसमुद्र में वासना से घटीयन्त्र की नाई भ्रमी हूँ । अब मैंने निश्चय किया है कि आत्मज्ञान विना जन्मों का अन्त कदाचित् नहीं होता सो तुम्हारी कृपा से अब मैंने निःसंकल्प पद को पाया।

इतनी कथा सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वज्रसार की नाई वह ब्रह्माण्ड खप्पर जिसका अनन्त कोटि योजन पर्यन्त विस्तार था उसे ये दोनों कैसे लंघती गई । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वज्रसार ब्रह्माण्ड खप्पर कहाँ है और वहाँ तक कौन गया है? न कोई वज्र सार ब्रह्माण्ड है और न कोई लॉघ गया है सब आकाशरूप है । उसी पर्वत के ग्राम में जिसमें वशिष्ठ ब्राह्मण का गृह था उसी मण्डप आकाशरूप सृष्टिका वह अनुभव करता भया । हे रामजी । जब वशिष्ठ ब्राह्मण मृतक भया तब उसी मण्डपाकाश के कोने में अपने को चारों ओर समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राजा जानने

लगा कि मैं राजा पद्म हूँ और अरुन्धती को लीला करके देखा कि यह मेरी स्त्री है । फिर वह मृतक हुआ तो उसको उसी आकाशमण्डप में और जगत का अनुभव हुआ और उसने अपने को राजा विदूरथ जाना । इससे तुम देखो कि कहाँ गया और क्या रूप है? उसी मण्डप आकाश में तो उसको सृष्टि का अनुभव हुआ; इससे जो सृष्टि है वह उसी वशिष्ठ के चित्त में स्थित है तब जप्तिरूप देवी की कृपा से अपने ही देहाकाश में लीला अन्तवाहक देह से जो आकाश रूप है उड़ी और ब्रह्माण्ड को लॉघ के फिर उसी गृह में आई । जैसे स्वप्न से स्वप्ना न्तर को प्राप्त हो जैसे ही देख आई । पर वह गई कहाँ और आई कहाँ? एक ही स्थान में रहकर एक सृष्टि से अन्य सृष्टि को देखा । इनको ब्रह्माण्ड के लंघ जाने में कुछ यत्न नहीं, क्योंकि उनका शरीर अन्तवाहक रूप है । हे रामजी! जैसे मन से जहाँ लंघना चाहे वहाँ लंघ जाता है वैसे ही वह प्रत्यक्ष लंघी है । वह सत्यसंकल्प रूप है और वस्तु से कहे तो कुछ नहीं । हे रामजी! जैसे स्वप्न की सृष्टि नाना प्रकार के व्यवहारों सहित बड़ी गम्भीर भासती है पर आभासमात्र है वैसे ही यह जगत देखते हैं पर न कोई ब्रह्माण्ड है न कोई जगत् है और न कोई भीत है केवल चैतन्यमात्र किञ्चन है और बना कुछ नहीं । जैसे चित्तसंवेदन फुरता है वैसे ही आभास हो भासता है । केवल वासनामात्र ही जगत् है, पृथ्वी आदिक भूत कोई उपजा नहीं-निवारण ज्ञान आकाश अनन्तरूप स्थित है । जैसे स्पन्द और निस्स्पन्द दोनों रूप पवन ही हैं वैसे ही स्फुर और अस्फुररूप आत्मा ही ज्यों का त्यों है और शान्त सर्वरूप चिदाकाश है । जब चित्त किञ्चन होता है तब आपही जगत् रूप हो भासता है-दूसरा कुछ नहीं । जिन पुरुषों ने आत्मा जाना है उनको जगत् आकाश से भी शून्य भासता है और जिन्होंने नहीं जाना उनको जगत् वज्रसार की नाई दृढ़ भासता है । जैसे स्वप्नमें नगर भासते हैं वैसे ही यह जगत् है । जैसे मरुस्थल में जल और सुवर्ण में भूषण भासते हैं वैसे ही आत्मा में जगत् भासता है । हे रामजी! इस प्रकार देवी और लीला ने संकल्प से नाना प्रकार के स्थानों को देखा जहाँ झरनों से जलज चला आता था; बावली और सुन्दर ताल और बगीचे देखे जहाँ पक्षी शब्द करते थे और मेघ पवन संयुक्त देखे मानों स्वर्ग यहीं था ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार देखके वे दोनों शीतलचित्त ग्राम में वास करती भईं और चिरकाल जो आत्म अभ्यास किया था उससे शुद्ध ज्ञानरूप और त्रिकालज्ञान से सम्पन्न हुईं । उससे उन्हें पूर्व की स्मृति हुई और जो कुछ अरुन्धती के शरीर से किया था सो देवी से कहा कि हे देवी! तुम्हारी कृपा से अब मुझको पूर्व की स्मृति हुई जो कुछ इस देश में मैंने किया था सो प्रकट भासता है कि यहाँ एक ब्राह्मणी थी, उसका शरीर वृद्ध था और नाड़ियाँ दीखती थी और भर्ता को बहुत प्यारी और पुत्रों की माता थी वह मैं ही हूँ । हे देवि! मैं यहाँ देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करती थी, यहाँ दूध रखती, यहाँ अन्नादिकों के वासन रखती थी, यहाँ मेरे पुत्र, पुत्रियाँ, दामाद और दौहित्र बैठते थे; यहाँ मैं बैठती थी और भृत्यों को कहती थी कि शीघ्र ही कार्य करो । हे देवि! यहाँ मैं रसोई करती थी और मेरा भर्ता शाक और गोबर ले आता था और सर्व

मर्यादा कहता था । ये वृक्ष मेरे लगाये हुए हैं, कुछ फल मैंने इनसे लिये हैं और कुछ रहें हैं वे ये हैं । यहाँ मैं जलपान करती थी । हे देवि! मेरा भर्ता सब कर्मों में शुद्ध था पर आत्मस्वरूप से शून्य था । सब कर्म मुझको स्मरण होते हैं । यहाँ मेरा पुत्र ज्येष्ठशर्मा गृह में रुदन करता है । यह बेलि मेरे गृह मे बिस्तरी है और सुन्दर फूल लगे हैं । इनके गुच्छे छत्रों की नाईं हैं और झरोखे बेलि से आवरे हुए हैं । मेरा मण्डप आकाश है, इससे मेरे भर्ता का जीव आकाश है । देवी बोली, हे लीले! इस शरीर के नाभिकमल से दश अंगुल ऊर्ध्व हृदयाकाश है, सो अंगुष्ठमात्र हृदय है उसमें उसका संवित आकाश है । उसमें जो राजसी वासना थी उससे उसके चारों समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य फुर आया कि " मैं राजा हूँ" यहाँ उसे आठ दिन मृतक हुए बीते हैं और यहाँ चिरकाल राज्य का अनुभव करता है । हे देवि! इस प्रकार थोड़े काल में बहुत अनुभव होता है और हमारे ही मण्डप में वह सब पड़ा है । उसकी पुर्यष्टक में जगत् फुरता है उसमें ही राजा विदूरथ है इस राज्य के संकल्प से उसकी संवित इसी मण्डप आकाश में स्थित है । जैसे आकाश में गन्ध को लेके पवन स्थित हो वैसे ही उसकी चेतन संवित संकल्प को लेकर इसी मण्डपाकाश में स्थित है उसकी संवित इस मण्डप आकाश में है उस राजा की सृष्टि मुझको कोटि योजन पर्यन्त भासती है । यदि मैं पर्वत और मेघ अनेक योजन पर्यन्त लंघती जाऊँ तब भर्ता के निकट प्राप्त होऊँ और चिदाकाश की अपेक्षा से अपने पास ही भासती है । अब व्यवहार दृष्टि से वह कोटि योजन पर्यन्त है इससे चलो जहाँ मेरा भर्ता राजा विदूरथ है वह स्थान दूर है तो भी निश्चय से समीप है । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहकर वे दोनों, जैसे खड्ग की धारा श्याम होती है, जैसे विष्णुजी का अंग श्याम है, जैसे काजर श्याम होता और जैसे भ्रमरे की पीठ श्याम होती है वैसे ही श्याम मण्डपाकाश में पखेरू के समान अन्तवाहक शरीर से उड़ी और मेघों और बड़े वायु के स्थान; सूर्य, चन्द्रमा और ब्रह्मलोक पर्यन्त देवताओं के स्थान को लाँघकर इस प्रकार दूर से दूर गई और शून्य आकाश में ऊर्ध्व जाके ऊर्ध्व को देखती भई कि सूर्य और चन्द्रमा आदि कोई नहीं भासता । तब लीला ने कहा हे देवि । इतना सूर्य आदि का प्रकाश था वह कहाँ गया? यहाँतो महाअन्धकार है; ऐसा अन्धकार है कि मानों सृष्टि में ग्रहण होता है । देवी बोली, हे लीले! हम महाआकाश में आई हैं । यहाँ अन्धकार का स्थान है, सूर्य आदि कैसे भासें? जैसे अन्धकूप में त्रसरेणु नहीं भासते वैसे ही यहाँ सूर्य चन्द्रमा नहीं भासते । हम बहुत ऊर्ध्व को आई हैं । लीला ने पूछा, हे देवि! बड़ा आश्चर्य है कि हम दूर से आई हैं जहाँ सूर्यादिकों का प्रकाश भी नहीं भासता इससे आगे अब कहाँ जाना है? देवी बोलीं, हे लीले! इसके आगे ब्रह्माण्ड कपाट आवेगा । वह बड़ा वज्रसार है और अनन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार है और उसकी धूलि की कणिका भी इन्द्र के वज्र समान हैं इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार देवी कहती ही थी कि आगे महावज्रसार ब्रह्माण्ड कपाट आया और अन्त कोटि योजन पर्यन्त उसका विस्तार देखकर उसको भी वे लाँघ गईं पर उन्हें कुछ भी क्लेश न भया क्योंकि जैसा किसी को निश्चय होता है वैसे ही अनुभव होता है । वह निरावरण आकाशरूप देवियाँ ब्रह्माण्ड

कपाट को लॉघ गई । उसके परे दशगुणा जल का आवरण; उसके परे दशगुणा अग्नितत्व ; उसके परे दशगुणा वायु; उसके परे दशगुणा आकाश और उसके परे परमाकाश है । उसका आदि मध्य और अन्त कोई नहीं । जैसे बन्ध्या के पुत्र की कथा की चेष्टा का आदि अन्त कोई नहीं होता वैसे ही परम आकाश है; वह नित्य, शुद्ध और अनन्तरूप है और अपने आपमें स्थित है । उसका अन्त लेने को यदि सदाशिव मनरूपी वेग से और विष्णुजी गरुड़जी पर आरूढ़ होके कल्प पर्यन्त धावें तो भी उसका अन्त न पावें और पवन अन्त लिया चाहे तो वह भी न पावे । वह तो आदि, मध्य और अन्त कलना से रहित बोधमात्र है ।

वशिष्ठजी बोले , हे रामजी! जब वे पृथ्वी, अप्, तेज आदिक आवरणों को लॉघ गई तब परम आकाश उनको भासित हुआ । उसमें उनको धूलि की कणिका और सूर्य के त्रसरेणु के समान ब्रह्माण्ड भासे । वह महाकाल शून्य को धारनेवाला परम आकाश है और चिद्गुण जिसमें सृष्टि फुरती है वह ऐसा महासमुद्र है कि कोई उसमें अधः को जाता है और कोई ऊर्ध्व को जाता है कोई तिर्यक् गति को पाता है । हे रामजी! चित संवित् में जैसा जैसा स्पन्द फुरता है वैसा ही वैसा आकार हो भासता है; वास्तव में न कोई अधः है, न कोई ऊर्ध्व है, न कोई आता है और न कोई जाता है केवल आत्मसत्ता अपने आप में ज्यों की त्यों स्थित है । फुरने से जगत् भासता है और उत्पन्न होकर फिर नष्ट होता है । जैसे बालक का संकल्प उपज के नष्ट हो जाता वैसा ही चैतन्य संवित् में जगत् फुरके नष्ट हो जाता है । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! अधः और ऊर्ध्व क्या होते हैं तिर्यक क्यों भासते हैं और यहाँ क्या स्थित है सो मुझसे कहो? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! परमाकाश -सत्ता आवरणसे रहित शुद्ध बोधरूप है । उसमें जगत् ऐसे भासता है जैसे आकाश में भ्रान्ति से तरवरे भासते हैं, उसमें अधः और ऊर्ध्व कल्पनामात्र है । जैसे हलों के बेंट के चौगिर्द चींटियाँ फिरती हैं और उनको मन में अधःऊर्ध्व भासता है सो उनके मन में अधः ऊर्ध्व की कल्पना हुई है । हे रामजी! यह जगत् आत्मा का आभासरूप है । जैसे मन्दराचल पर्वत के ऊपर हस्तियों के समूह विचरते हैं वैसे ही आत्मा में अनेक जगत् फुरते हैं; जैसे मन्दराचल पर्वत के आगे हस्ती हो वैसे ही ब्रह्म के आगे जगत् हैं और वास्तव में सब ब्रह्मरूप है । कर्ता, कर्म, करण सम्प्रदान अपादान और अधिकरण सब ब्रह्म ही हैं और ये जगत् ब्रह्मसमुद्र के तरंग हैं । उन जगत् ब्रह्माण्डों को देवियों ने देखा । जैसे ब्रह्माण्ड उन्होंने देखे हैं वे सुनिए । कई सृष्टि तो उन्होंने उत्पन्न होती देखीं और कई प्रलय होती देखीं । कितनों के उपजने का आरम्भ देखा जैसे नूतन अंकुर निकलता है; कहीं जल ही जल है; कहीं अन्धकार ही है-प्रकाश नहीं; कहीं सब व्यवहार संयुक्त हैं और वेदशास्त्र के अपूर्व कर्म हैं । कहीं आदि ईश्वर ब्रह्मा हैं उनसे सब सृष्टि हुई है; कहीं आदि ईश्वर विष्णु हैं उनसे सब सृष्टि हुई और कहीं आदि ईश्वर सदाशिव हैं । इसी प्रकार कहीं और

प्रजापति से उपजते हैं; कहीं नाथ को कोई नहीं मनाते सब अनीश्वरवादी हैं; कहीं तिर्यक् ही जीव रहते हैं; कहीं देवता ही रहते हैं और कहीं मनुष्य ही रहते हैं । कहीं बड़े आरम्भ करके सम्पन्न हैं और कहीं शून्यरूप हैं । हे रामजी! इसी प्रकार उन्होंने अनेक सृष्टि चिदाकाश में उत्पन्न होती देखीं जिनकी संख्या करने को कोई समर्थ नहीं; चिदात्मा में आभासरूप फुरती हैं और जैसे फुरना होती है उसके अनुसार फुरती हैं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार दोनों देवियाँ राजा के जगत् में आकर अपने मण्डप स्थानों को देखती भई । जैसे सोया हुआ जाग के देखता है वैसे ही जब अपने मण्डप में उन्होंने प्रवेश किया तब क्या देखा कि राजा का शव फूलों से ढाँपा हुआ पड़ा है । अर्द्धरात्रि का समय है; सब लोग गृह में सोये हुए हैं और राजा पद्म के शव के पास लीला का शरीर पड़ा है । और अन्तःपुर में धूप, चन्दन, कपूर और अगर की सुगन्ध भरी है तब वे विचारने लगी कि वहाँ चलें जहाँ राजा राज्य करता है। उसकी पुर्यष्टक में विदूरथ का अनुभव हुआ था, उस संकल्प के अनुसार विदूरथ की सृष्टि देखने को देवी के साथ लीला चली और अन्तवाहक शरीर से आकाशमार्ग को उड़ीं । जाते जाते ब्रह्माण्ड की बाट को लाँघ गईं तब विदूरथ के संकल्प में जगत् को देखा । जैसे तालाब में सेवार होती है वैसे ही उन्होंने जगत् को देखा । सप्तद्वीप नवखण्ड, सुमेरुपर्वत, द्वीपादिक सब रचना देखी और उसमें जम्बूद्वीप और भरतखण्ड और उसमें विदूरथ राजा का मण्डपस्थान देखती भई । वहाँ उन्होंने राजा सिद्ध को भी देखा कि राजा विदूरथ की पृथ्वी की कुछ हद उसके भाइयों ने दबाई थी और उसके लिये सेना भेजी । राजा विदूरथ ने भी सुनके सेना भेजी और दोनों सेना मिलके युद्ध करने को आई है; देवता विमानों पर आरूढ़ और सिद्ध, चारण, गन्धर्व और विद्याधर शास्त्रों को छोड़ देखने को स्थित भये हैं । विद्याधरी और अप्सरा भी आई हैं कि जो शूरमा युद्ध में प्राणों को त्यागेंगे हम उनको स्वर्ग में ले जावेंगी । रक्त और माँस भोजन करने को भूत, राक्षस, पिशाच, योगिनियाँ भी आन स्थित भई हैं । हे रामजी! शूर पुरुष तो स्वर्ग के भूषण हैं और अक्षयस्वर्ग को भोगेंगे और जिनका मरना धर्मपक्ष से संग्राम में होगा वह भी स्वर्ग को जावेंगे । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! शूरमा किसको कहते हैं और जो युद्ध करके स्वर्ग को नहीं प्राप्त होते वे कौन हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो शास्त्र युक्ति से युद्ध नहीं करते और अनर्थरूपी अर्थ के निमित्त युद्ध करते हैं सो नरक को प्राप्त होते हैं और जो धर्म, गौ, ब्राह्मण, मित्र, शरणागत और प्रजा के पालन के निमित्त युद्ध करते हैं वे स्वर्ग के भूषण हैं । वे ही शूरमा कहाते हैं और मरके स्वर्ग में जाते हैं और स्वर्ग में उनका यश बहुत होता है । जो पुरुष धर्म के अर्थ युद्ध करते हैं वे अवश्य स्वर्गलोक को प्राप्त होते हैं वे मूर्ख हैं । स्वर्ग को वही जाते हैं जिनका

मरना धर्म के अर्थ हुआ है । जो किसी भोग के अर्थ युद्ध करते हैं सो नरक को ही प्राप्त होते हैं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! दोनों देवियों ने रणसंग्राम में क्या देखा कि एक महा शून्य वन है उसमें जैसे दो बड़े समुद्र उछलकर परस्पर मिलने लगे वैसे ही दोनों सेना जुड़ी हैं । तब उन्होंने क्या देखा कि सब योधा आन स्थित हुए हैं और मच्छव्यूह और गरुडव्यूह चक्रव्यूह भिन्न भिन्न भाग करके दोनों सेना के योधा एक एक होकर युद्ध करने लगे हैं । प्रथम परस्पर देख एक ने कहा कि यह बाण चलाव और दूसरे ने कहा कि नहीं तू चला; उसने कहा नहीं तू ही प्रथम चला । निदान सब स्थिर हो रहे, मानो चित्र लिखे छोड़े हैं । इसके अनन्तर दोनों सेना के और योधा आये मानों प्रलयकाल के मेघ उछले हैं उनके आने से एक-एक योधा की मर्यादा दूर हो गई सब इकट्ठे युद्ध करने लगे और बड़े शस्त्रों के प्रवाह करने लगे । कहीं खंगों के प्रहार चलते थे और कहीं कुल्हाड़े, त्रिशूल, भाले, बरछियाँ, कटारी, छूरी, चक्र, गदादिक शस्त्र बड़े शब्द करके चलाने लगे । जैसे मेघ वर्षाकाल में वर्षा करते हैं वैसे ही शस्त्रों की वर्षा होने लगी । हे रामजी! प्रलयकाल के जितने उपद्रव थे सो सब इकट्ठे हुए । योधा युद्ध की ओर आये और कायर भाग गये । निदान ऐसा संग्राम हुआ कि अनेकों योधाओं के शिर काटे गये और उनके हस्ती घोड़े मृत्यु को प्राप्त हुए । जैसे कमल के फूल काटे जाते हैं वैसे ही उनके शीश काटे जाते थे । तब दोनों सेनाओं के राजा चिन्ता करने लगे कि क्या होगा । हे रामजी! इस युद्ध में रुधिर की नदियाँ चलीं, उनमें प्राणी बहते जाते थे और बड़े शब्द करते थे जिनके आगे मेघों के शब्द भी तुच्छ भासते थे । हे रामजी! दोनों देवियाँ संकल्प के विमान कल्प के आकाशमें स्थित हुईं तो क्या देखा कि ऐसा युद्ध हुआ है जैसे महाप्रलय में समुद्र एक रूप हो जाते हैं । और बिजली की नाई शस्त्रों का चमत्कार होता था । जो शूरवीर हैं उनके रक्त की जो बूंदियाँ पृथ्वी पर पड़ती हैं उन बूंदों में जितने मृत्तिका के कणके लगे होते हैं उतने ही वर्ष वे स्वर्ग को भोगेंगे । जो शूरमा युद्ध में मृतक होते थे उनको विद्याधरियाँ स्वर्ग को ले जाती थीं और देवगण स्तुति करते थे कि ये शूरमा स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और अक्षय अर्थात् चिरकाल स्वर्ग भोगेंगे । हे रामजी! स्वर्गलोक के भोगमन में चिन्तन करके शूरमा हर्षवान् होते थे और युद्ध में नाना प्रकार के शस्त्र चलाते और सहन करते थे और फिर युद्ध के सम्मुख धीरज धरके स्थित होते थे । जैसे सुमेरु पर्वत धैर्यवान् और अचल स्थित है उससे भी अधिक वे धैर्यवान् थे । संग्राम में योधा ऐसे चूर्ण होते थे जैसे कोई वस्तु उखली में चूर्ण होती है परन्तु फिर सम्मुख होते और बड़े हाहाकार शब्द करते थे हस्ती से हस्ती परस्पर युद्ध करते शब्द करते थे । हे रामजी! इसी प्रकार अनेक जीव नाश को प्राप्त हुए । जो शूरमा मरते थे उनको विद्याधरियाँ स्वर्ग को ले जाती थीं । निदान परस्पर बड़े युद्ध हुए । खंगवाले खंगवाले से और त्रिशूलवाले त्रिशूलवाले से युद्ध करते । जैसा-जैसा शस्त्र किसी के पास हो वैसे ही उसके साथ युद्ध करें और जब शस्त्र पूर्ण हो जावें तो मुष्टि के साथ युद्ध करें । इसी प्रकार दशों दिशाएँ युद्ध से परिपूर्ण हुईं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार बड़ा युद्ध हुआ तो गंगाजी के समान शूरमों के रुधिर का तीक्ष्ण प्रवाह चला और उस प्रवाह में हस्ती, घोड़े, मनुष्य, रथ सब बहे जाते थे और सेना नाश को प्राप्त होती जाती थी । हे रामजी! उस समय बड़ा क्षोभ उदय हुआ और राक्षस, पिशाचादिक तामसी जीव माँस भोजन करते और रुधिर पान करते आनन्दित होते थे । जैसे मन्दराचल पर्वत से क्षीरसमुद्र को क्षोभ हुआ था वैसे ही युद्ध संग्राम में योद्धाओं का क्षोभ हुआ और रुधिर का समुद्र चला । उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और शूरमा तरंगों की नाई उछलते दृष्टि आते थे । रथवालों से रथवाले; घोड़ेवालों से हस्तीवाले और प्यादे से प्यादे युद्ध करते थे । हे रामजी! जैसे प्रलयकाल की अग्नि में जीव जलते हैं वैसे ही जो योधा रणभूमि में आवें सो नाश को प्राप्त हों । जैसे दीपक में पतंग प्रवेश करता है और जैसे समुद्र में नदियाँ प्रवेश करती हैं वैसे ही रणभूमि में दशों दिशाओं के योद्धा प्रवेश करते थे । किसी का शीश काटा जावे और धड़ युद्ध करे; किसी की भुजा काटी जायें और किसी के ऊपर रथ चले जावें और हस्ती, घोड़े, उलट-उलट पड़े और नाश हो जावें । हे रामजी । दोनों राजाओं की सहायता के निमित्त पूर्वदिशा, काशी, मद्रास, भीला; मालव, सकला, कवटा, किरात, म्लेच्छ, पारसी, काशमीर, तुरक, पञ्जाब, हिमालय पर्वत; सुमेरुपर्वत इत्यादि के अनेक देशपाल, जिनके बड़े भुजदण्ड, बड़े केश और बड़े भयानक रूप थे युद्ध के निमित्त आये । बड़ी ग्रीवावाले, एकटँगे; एकाचल, एकाक्ष, घोड़े के मुखवाले, श्वान के मुखवाले और कैलास के राजा और जितने कुछ पृथ्वी के राजा थे सो सब आये । जैसे महाप्रलय के समुद्र उछलते हैं और दिशा स्थान जल से पूर्ण होते हैं वैसे ही सेना से सब स्थान पूर्ण हुए और दोनों ओर से युद्ध करने लगे । चक्रवाले चक्रवाले से और खड्ग, कुल्हाड़े, त्रिशूल, छुरी, कटारी, बरछी, गदा, वाणादिक शस्त्रों से परस्पर युद्ध करने लगे । एक कहे कि प्रथम मैं जाता हूँ, दूसरा कहे कि मैं प्रथम आता हूँ । हे राम जी! उस काल में ऐसा युद्ध होने लगा कि कहने में नहीं आता । दौड़ दौड़ के योद्धा रण में जावें और मृत्यु को प्राप्त हों । जैसे अग्नि में घृत की आहुति भस्म होती है वैसे ही रण में योद्धा नाश को प्राप्त होते थे । ऐसा युद्ध हुआ कि रुधिर का समुद्र चला, उसमें हस्ती, घोड़े, रथ और मनुष्य तृणों की नाई बहते थे और सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तमय हो गई । जैसे आँधी से फल, फूल और वृक्ष गिरते हैं वैसे ही पृथ्वी पर कट-कट शब्द करते शिर गिरते थे । हे रामजी! जो उस काल में युद्ध हुआ वह कहा नहीं जाता । सहस्रमुख शेषनाग भी उस युद्ध के कर्मों को सम्पूर्ण वर्णन न कर सकेंगे तब और कौन कहेगा । मैंने वह संक्षेप से कुछ सुनाया है ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार युद्ध हुआ तो सूर्य अस्त हुआ मानों उसकी किरणों भी शस्त्रों के प्रहार से अस्तता को प्राप्त हुईं । तब विदूरथ ने सेनापति और मन्त्री को बुलाकर कहा हे मन्त्रियो! अब युद्ध को शान्त करो, क्योंकि सूर्य अस्त हुआ है और योद्धा भी सब युद्ध करके थके हैं । रात्रि को सब आराम करें दिन को फिर युद्ध करेंगे । इससे आज्ञा फेरो कि अब युद्ध शान्त हो । तब मन्त्री ने दोनों सेना के मध्य में ऊँचे चढ़के वस्त्र फेरा कि अब युद्ध को शान्त करो, दिन को फिर युद्ध करेंगे । निदान दोनों सेनाओं ने युद्ध का त्याग किया और अपनी अपनी सेना में नौबत नगारे बजाने लगे और राजा विदूरथ भी अपने गृह में आ स्थित हुआ । जैसे शरत्काल में मेघों से रहित आकाश निर्मल होता है वैसे ही रण में संग्राम शान्त हुआ । रात्रि को राक्षस, पिशाच, गीदड़, भेड़िये और डाकिनी माँस का भोजन करने और रुधिर पान करने लगे । कितनों के शिर और अंग काटे गये, पर जीते थे और पड़े हाय-हाय करते थे । वे निशाचरों को देखके डरने लगे और कितने लोगों ने भाई और मित्रों को देखा । हे रामजी! तब राजा विदूरथ ने स्वर्ण के मन्दिर में फूलों सहित चन्द्रमा की नाई शीतल और सुन्दर शय्या पर सब किवाड़ चढ़ा के विश्राम किया और मन्त्रियों के साथ विचार किया कि प्रातःकाल उठके ऐसे करेंगे । ऐसे विचार करके राजा ने शयन किया पर एक मुहूर्त पर्यन्त सोया और फिर चिन्ता से जग उठा । इधर इन दोनों देवियों ने आकाश से उतर के; जैसे सन्ध्या काल में कमल के मुख मूँदते हैं और उनमें वायु प्रवेश कर जाता है वैसे ही मन्दिरों में सूक्ष्मरूप से प्रवेश किया । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! शरीर से परमाणु के रन्ध्र में देवियों ने कैसे प्रवेश किया वह तो कमल के तन्तु और बाल के अग्र से भी सूक्ष्म होते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भ्रान्ति से जो आधिभौतिक शरीर हुआ है उस आधिभौतिक शरीर से सूक्ष्मरन्ध्र में प्रवेश कोई नहीं कर सकता परन्तु मनरूपी शरीर को कोई नहीं रोक सकता । हे रामजी! देवी और लीला का अन्तवाहक शरीर था उससे सूक्ष्म परमाणु के मार्ग से उनको प्रवेश करने में कुछ विचार न हुआ । जो उनका आधिभौतिक शरीर होता तो यत्र भी होता । जहाँ आधिभौतिक न हो वहाँ यत्र की शंका कैसे हो? हे रामजी । और भी सब शरीर चित्‍रूपी हैं पर जैसा निश्चय अनुभव संवित में होता है तैसे ही सिद्धता होती है अन्यथा नहीं होती । जिसके निश्चय में ये शरीरादिक आकाशरूप हैं उनको आधिभौतिकता का अनुभव नहीं होता और जिसके निश्चय में आधिभौतिकता दृढ़ हो रही है उनको अन्तवाहकता का अनुभव नहीं होता । जिस पुरुष को पूर्वार्ध का अनुभव नहीं उनको उत्तरार्ध में गमन नहीं होता- जैसे वायु का चलना ऊर्ध्व नहीं होता, तिरछा स्पर्श होता है, अग्नि का चलना अधः को नहीं होता और जल का ऊर्ध्व को नहीं होता । जैसे आदि चेतन संवित् में प्रवृत्ति हुई है वैसे ही अब तक स्थित है । इससे जिसको अन्तवाहक शक्ति उदय हुई है उसको आधिभौतिक नहीं रहती और जिसको आधिभौतिक दृढ़ है उनको अन्तवाहक शक्ति उदय नहीं होता । हे रामजी! जो पुरुष छाया में बैठा हो उसको धूप का अनुभव नहीं होता और जो धूप में बैठा है उसको छाया का अनुभव नहीं होता । अनुभव उसी का होता है जिसकी चित्त में दृढ़ता होती है अन्यथा किसी को कदाचित्

नहीं होता । हे रामजी! जैसा दृढ़ भाव चित्तसंवित में होता है तो जब तक और प्रतीत नहीं होती तबतक वैसे ही सिद्धता होती है । जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है और मनुष्य भय से कंपायमान होता है, सो कंपनी भी तब तक है जब तक सर्प का अनुभव अन्यथा नहीं होता; जब रस्सी का अनुभव उदय होता है तब सर्पभ्रम नष्ट होता है वैसे ही जैसा अनुभव चित्त संवित् में दृढ़ होता है उसी का अनुभव होता है । यह वार्ता बालक भी जानता है कि जैसी जैसी चित्त की भावना होती है वैसा ही रूप भासता है निश्चय और हो और अनुभव और प्रकार हो ऐसा कदाचित् नहीं होता । हे रामजी! जिनको ये आकार स्वप्न संकल्पपुर की नाईं हुए हैं सो आकाशरूप हैं । जिनको ऐसा निश्चय हो उनको कोई रोक नहीं सकता । औरों का भी चित्तमात्र शरीर है पर जैसा जैसा संवेदन दृढ़ हुआ है वैसा ही वैसा आपको जानता है । हे रामजी । आदि में सब कुछ आत्मा से स्वाभाविक उपजा है सो अकारणरूप है और पीछे प्रमाद से द्वैतकार्य कारणरूप होके स्थित हुआ है । हे रामजी! आकाश तीन हैं- एक चिदाकाश; दूसरा चित्ताकाश और तीसरा भूताकाश है । उनमें वास्तव एक चिदाकाश है और भावना करके भिन्न भिन्न कल्पना हुई है । आदि शुद्ध अचेत, चिन्मात्र चिदाकाश में जो संवेदन फुरा है उसका नाम चित्ताकाश है और उसी में यह सम्पूर्ण जगत् हुआ है । हे रामजी! चित्तरूपी शरीर सर्वगत होकर स्थित हुआ है जैसा जैसा उसमें स्पन्द होता है वैसा ही होके भासता है । जितने कुछ पदार्थ हैं उन सबों में व्याप रहा है; त्रसरेणु के अन्तर भी सूक्ष्मभाव से स्थित हुआ और आकाश के अन्तर भी व्याप रहा है । पत्र फल उसी से होता हैं, जल में तरंग होके स्थित हुआ है; पर्वत के भीतर यही फुरता, मेघ होके भी यही वर्षता और जल से बरफ भी यह चित्त ही होता है । अनन्त आकाश परमाणुरूप भीतर बाहर सर्वजगत् में यही है । जितना जगत् है वह चित्तरूप ही है और वास्तव में आत्मा से अनन्त रूप है । जैसे समुद्र और तरंग में कुछ भेद नहीं वैसे ही आत्मा और चित्त में कुछ भेद नहीं । जिस पुरुष को ऐसे अखण्ड सत्ता आत्मा का अनुभव हुआ है और जिसका सर्ग के आदि में चित्त ही शरीर है और आधि भौतिकता को नहीं प्राप्त हुआ वह महाआकाशरूप है उसको पूर्वका स्वभाव स्मरण रहा है इस कारण उसका अन्तवाहक शरीर है । हे रामजी! जिस पुरुष को अन्तवाहकता में अहंप्रत्यय है उसको सब जगत् संकल्पमात्र भासता है वह जहाँ जाने की इच्छा करता है वहाँ जाता है उसको कोई आवरण नहीं रोक सकता । जिसको आधिभौतिकता में निश्चय है उसको अन्तवाहक रूप हैं और भ्रम से अनहोता आधिभौतिकता देखते हैं । जैसे मरुस्थल में जल भासता है और जैसे स्वप्न में बन्ध्या के पुत्र का सद्भाव होता है वैसे ही आधिभौतिक जगत् भासता है । जैसे जल शीतलता से बरफ हो जाता है वैसे ही जीव प्रमाद से अन्तवाहक आधिभौतिक शरीर होता है । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! चित्त में क्या है; कैसे होता है और कैसे नहीं होता; यह जगत् कैसे चित्तरूप है और क्षण में अन्यथा कैसे हो जाता है? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! एक एक जीव प्रति चित्त होता है । जैसा जैसा चित्त है वैसी ही वैसी शक्ति है । चित्त में जगत् भ्रम होता है, क्षण में कल्प और सम्पूर्ण जगत् उदय हो आता है और क्षण में सम्पूर्ण लय होता है । किसी

को निमेष में कल्प हो आता है और किसी को क्रम से भासता है सो मन लगाकर सुनिये । हे रामजी! जब मरने की मूर्छा होती है तो उस महाप्रलय रूप मृत्यु मूर्छा के अनन्तर नाना प्रकार का जगत् फुर आता है जैसे स्वप्न में सृष्टि फुर आती है और जैसे संकल्प का पुर भासता है वैसे ही मृत्यु मूर्छा अनन्तर सृष्टि भासती है । जैसे महाप्रलय के अनन्तर आदि विराड् रूप ब्रह्मा होता है वैसे ही मृत्यु के अनन्तर इसका अनुभव होता है । यह भी विराट् होता है, क्योंकि इसका मनरूपी शरीर होता है । रामजी बोले, हे भगवन् । मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि होती है वह स्मृति से होती है, स्मृति बिना नहीं होती, इसलिये मृत्यु के अनन्तर जो सृष्टि हुई तो सकारणरूप हुई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब महाप्रलय होता है तब हरि हरादिक सबही विदेहमुक्त होते हैं । फिर स्मृति का सम्भव कैसे हो? हमसे आदि ले जो बोध आत्मा हैं जब विदेह मुक्त हुए तब स्मृति कैसे सम्भव हो? अब के जो जीव हैं उनका जन्म-मरण स्मृति कारण से होता है, क्योंकि मोक्ष नहीं होता-मोक्ष का उनको अभाव है । हे रामजी! जब जीव मरते हैं तब उन्हें मृत्यु-मूर्छा होती है, पर कैवल्यभाव में स्थित नहीं होते; मूर्छा से उनका संवित् आकाशरूप होता है उससे फिर चित्तसंवेदन फुर आता है । तब उन्हें क्रम करके जगत् फुर आता है, पर जब बोध होता है तब तन्मात्रा और काल, क्रिया, भाव, अभाव, स्थावर जंगम जगत् सब आकाशरूप हो जाता है । जिनका संवेदन दृश्य की ओर धावता है उनको मृत्यु-मूर्छा के अनन्तर अज्ञान संवेदन फुरता है, उससे उन्हें शरीर और इन्द्रियाँ भास आती हैं । वह अन्त-वाहक शरीर है परन्तु चिरकाल की प्राप्ति करके आधिभौतिक होता भासता है । तब देश, काल, क्रिया, आधार, आधेय उदय होकर स्थित होते हैं जैसे वायु स्पन्द और निस्स्पन्द रूप है, पर जब स्पन्द होता है तब भासता है और निस्स्पन्द होने से नहीं भासता वैसे ही संवेदन से जब जगत् भासता है तब जानता है कि यहाँ उपजा हूँ । जैसे स्वप्न में अङ्गना के स्पर्श का अनुभव होता है वह मिथ्या है वैसे ही भ्रम से जो आपको उपजा देखता है वह भी मिथ्या है । हे रामजी! जहाँ यह जीव मृतक होता है वहीं जगत्भ्रम देखता है । वास्तव में जीव भी आकाशरूप है और जगत् भी आकाशरूप है । अज्ञान से जीव आपको उपजा मानता है और नाना जगत्भ्रम देखता है कि यह नगर है, यह पर्वत है, ये सूर्य और चन्द्रमा हैं, ये तारागण हैं और जरा-मरण, आधि-व्याधि संकट से व्याकुल होता है । वह भाव अभाव, भय, स्थूल, सूक्ष्म, चर-अचर, पृथ्वी, नदिया, भूत-भविष्य वर्त मान; क्षय-अक्षय और भूमि को भी देखता है और समझता है कि मैं उपजा हूँ, अमुक का पुत्र हूँ, यह मेरा कुल है, यह मेरी माता है, ये मेरे बाँधव हैं, इतना धन हमको प्राप्त हुआ है इत्यादि अनेक वासना जालों में दुःखी होता है और कहता है कि यह सुकृत है और यह दुष्कृत है; प्रथम मैं बालक था; अब मेरी यह अवस्था हुई और यह मेरा वर्ण है इत्यादि अनेक जगत् कल्पना हरएक जीव को उदय होती है । हे रामजी! संसाररूपी एक वृक्ष उगा है; चित्तरूपी उसका बीज है; तारागण उसके फूल हैं और चञ्चल मेघ पत्र हैं । जंगम जीव, मनुष्य, देवता, दैत्यादिक पक्षी उस पर बैठनेवाले हैं और रात्रि उसके ऊपर धूलि हैं; समुद्र उसकी तलावड़ी है; पर्वत उसमें शिलबट्टे हैं और अनुभवरूप अंकुर हैं जहाँ जीव मरता है वहीं क्षण

में ये सब देखता है । इसी प्रकार एक एक जीव को अनेक जगत् भासते हैं । हे रामजी! कितने कोटि ब्रह्मा विष्णु, इन्द्र, पवन और सूर्यादिक हुए हैं । जहाँ सृष्टि है वहीं ये होते हैं इससे चिद्अणु में अनेक सृष्टि हैं, जीव भी अनन्त हुए हैं और उन्हीं में सुमेरु, मण्डल, द्वीप और लोक भी बहुतेरे हुए हैं । जो चिद्अणु में ही सृष्टि का अन्त नहीं तो परब्रह्म में अन्त कहाँ से आवे? वास्तव में है नहीं; जैसे पर्वत की दीवार में शिल्पी पुतलियाँ कल्पे तो कुछ है नहीं वैसे ही जगत् चिदाकाश में नहीं है केवल मनोमात्र ही है । हे रामजी! मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप है और चिदाकाश में मनन और स्मरण है । जैसे तरंग भी जलरूप हैं और जल ही में होते हैं; जल से इतर तरंग कुछ नहीं हैं, वैसे मनन और स्मरण भी चिदाकाशरूप जानो । हे रामजी! दृश्य कुछ भिन्न वस्तु नहीं है; दृष्टा ही दृश्य की नाई होकर भासता है । जैसे मनाकाश नाना प्रकार हो भासता है वैसे ही चिदाकाश का प्रकाश नाना प्रकार जगत् होकर भासता है । यह विश्व सब चिदाकाशरूप है। हमको तो ऐसे ही भासता है पर तुमको अर्थाकाशरूप भासता है, इसी कारण कहा कि लीला और सरस्वती आकाशरूप सर्वज्ञ स्वच्छरूप और निराकार थीं । वे जहाँ चाहती थीं तहाँ जाय प्राप्त होती थीं और जैसी इच्छा करती थीं वैसी सिद्धि होती थी, क्योंकि जिसको चिदाकाश का अनुभव हुआ है उसको कोई रोक नहीं सकता । सर्वरूप होके जो स्थित हुआ उसे गृह में प्रवेश करना क्या आश्चर्य है । वह तो अन्तवाहकरूप है ।

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जब दोनों देवियाँ जिनकी चन्द्रमा के समान कान्ति थी राजा के अन्तःपुर में संकल्प से प्रवेशकर सिंहासन पर स्थित हुई तो बड़ा प्रकाश अन्तःपुर में हुआ और शीतलता से व्याधि-ताप शान्त हुआ । जैसे नन्दनवन होता है वैसे ही अन्तःपुर हो गया और जैसे प्रातःकाल में सूर्य का प्रकाश होता है वैसे ही देवियों के प्रकाश से अन्तःपुर पूर्ण हुआ; मानो देवियों के प्रकाश से राजा पर अमृत की सींचना हुई । तब राजा ने देखा कि मानों सुमेरु के शृंग से दो चन्द्रमा उदय हुए हैं । ऐसे देख के वह विस्मय को प्राप्त हुआ और चिन्तना की कि ये देवियाँ हैं । इसलिये जैसे शेषनाग की शय्या से विष्णु भगवान् उठते हैं वैसे ही उसने और वस्त्रों को एक ओर करके हाथों में पुष्प लिये और हाथ जोड़ के देवियों के चरणों पर चढ़ाये और माथा टेक के पद्मासन बाँध पृथ्वी पर बैठ गया और कहने लगा, हे देवियों! तुम्हारी जय हो । तुम जन्म दुःख ताप के शान्त करनेवाले चन्द्रमा हो और अपूर्व सूर्य हो-अर्थात् पूर्व सूर्य के प्रकाश से बाह्यतम नष्ट होता है तुम्हारे प्रकाश से अन्तर अज्ञानतम भी नष्ट होता है, इससे अपूर्व सूर्य हो । इसके अनन्तर देवी मन्त्री को जो राजा के पास नदी के तट के फलों के वृक्षों के समान सोया था जन्म और कुल के कहावने के निमित्त संकल्प से जगाया और मन्त्री उठके फूलों से देवियों

का पूजन कर राजा के समीप जा बैठ गया । तब सरस्वती कहने लगी , हे राजन्! तू कौन है, किसका पुत्र है और कब तूने जन्म लिया है? हे राम जी! जब इस प्रकार देवी ने पूछा तब मन्त्री जो निकट बैठा था, बोला हे देवि! तुम्हारी कृपा से राजा का जन्म और कुल में कहता हूँ । इक्ष्वाकुकुल में एक राजा हुआ था जिसके कमल की नाई नेत्र थे और वह श्रीमान् था, उसका नाम कुन्दरथ था । निदान उसका पुत्र बुधरथ हुआ, बुधरथ के सिंधुरथ हुआ; उसका पुत्र महारथ हुआ; महारथ का पुत्र विष्णुरथ हुआ; उसका पुत्र कलारथ हुआ; कलारथ का पुत्र सयरथ हुआ; सयरथ का पुत्र नभरथ हुआ और उस नभरथ के बड़े पुण्य करके यह विदूरथ पुत्र हुआ । जैसे क्षीरसमुद्र से चन्द्रमा निकला है वैसे ही सुमित्रा माता से यह उपजा है । जैसे गौरीजी से स्वामि कार्तिक उत्पन्न हुए वैसे ही यह सुमित्रा से उत्पन्न हुए हैं । हे देवि! इस प्रकार तो हमारे राजा का जन्म हुआ है । जब यह दश का हुआ तब पिता इसको राज्य देकर आप वन को चला गया और उस दिन से इसने धर्म की मर्यादा से पृथ्वी की पालना की और बड़े पुण्य किये हैं । उन्हीं पुण्यों का फल तुम्हारा दर्शन अब इसको हुआ है । हे देवि! जो तुम्हारे दर्शन के निमित्त बहुत वर्षों तप करते हैं उनको भी तुम्हारा दर्शन पाना कठिन है, इससे इसके बड़े पुण्य हैं कि तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ । हे रामजी । इस प्रकार कहे जब मन्त्री तूष्णीम् हुआ तब देवीजी ने कृपा करके राजा विदूरथ के शीश पर हाथ रखकर कहा, हे राजन्! तुम अपने पूर्वजन्म को विवेकदृष्टि करके देखो कि तुम कौन हो? देवी के हाथ रखने से राजा के हृदय का अज्ञानतम निवृत्त हो गया; हृदय प्रफुल्लित हुआ और देवी के प्रसाद से राजा को पूर्व की स्मृति फुर आई । लीला और पद्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरण करके कहने लगा हे देवि! बड़ा अचरच है कि यह जगत् मन से रचा है । यह मैंने तुम्हारे प्रसाद से जाना कि मैं राजा पद्म था और लीला मेरी स्त्री थी। मुझ को मृतक हुए एक दिन ऐसे में भासा और यहाँ मैं सौ वर्ष का हुआ हूँ सो अब तक भ्रम से मैंने नहीं जाना; अब प्रत्यक्ष जानता हूँ । सौ वर्षों में जो अनेक कार्य मैंने किये हैं वह सब मुझको स्मरण होते हैं और अपने प्रपितामह और अपनी बाल्यावस्था व यौवन अवस्था मित्र और बान्धव भी स्मरण आते हैं- यह बड़ा आश्चर्य हुआ है । सरस्वती बोली, हे राजन्! जब जीव मृतक होते हैं तब उनको बड़ी मूर्च्छा होती है । उस मूर्च्छा के अनन्तर और लोक भास आते हैं और एक मुहूर्त में वर्षों का अनुभव होता है । जैसे स्वप्न में एक मुहूर्त में अनेक वर्षों का अनुभव होता है, वैसे ही तुझको मृत्यु- मूर्च्छा के अनन्तर यह लोकभ्रम भासता है । हे राजन्! जहाँ तुम पद्म राजा थे उस गृह में मृतक हुए तुमको एक मुहूर्त बीता है और यहाँ तुमको बहुतेरे वर्षों का अनुभव हुआ है । इससे भी जो पिछला वृत्तान्त है वह सुनिये । हे राजन् पहाड़ के ऊपर एक ग्राम था उसमें एक वशिष्ठ ब्राह्मण रहता था और अरुन्धती उसकी स्त्री थी । वह दोनों मन्दिर में रहते थे । अरुन्धती ने मुझसे वर लिया कि जब मेरा भर्ता मृतक हो तब उसका जीव इसी मण्डपाकाश में रहे । निदान जब वह मृतक हुआ तब उसकी पुर्यष्टक उसी मन्दिर में रही पर उसके संवित् में राजा की दृढ़ वासना थी इसलिये उस मण्डपाकाश में उसको पद्म राजा की सृष्टि फुर आई और अरुन्धती उसकी

स्त्री लीला होकर उसको प्राप्त हुई राजा पद्म का मण्डप उस ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित हुआ और फिर उस मण्डप में जब तू राजा पद्म मृतक हुआ तब तेरे संवित् में नाना प्रकार के आरम्भसंयुक्त यह जगत् फुर आया । हे राजन्! यह तेरा जगत् पद्मराजा के हृदय में फुर आया है और पद्म राजा के मण्डपाकाश में स्थित है । पद्म राजा का जगत् उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है और वही वशिष्ठ ब्राह्मण तुम विदूरथ राजा हुए हो । हे राजन्! यह सब जगत् प्रतिभामात्र है और मन की कल्पना से भासता है - उपजा कुछ नहीं । इतना सुन विदूरथ बोले, बड़ा आश्चर्य है कि जैसे मेरा यह जन्म भ्रमरूप हुआ वैसे ही इक्ष्वाकु का कुल और मेरे माता पिता सब भ्रमरूप हुए हैं । उसमें मैं जन्म लेके बालक हुआ और जब दश वर्ष का था तब पिता ने मुझको राज्य देके वनवास लिया । फिर मैंने दिग्विजय करके प्रजा की पालना की और शत वर्षों का मुझको अनुभव होता है । फिर मुझको दारुण अवस्था युद्ध की इच्छा हुई है और युद्ध करके रात्रि को मैं गृह में आया । तब तुम दोनों देवियाँ मेरे गृह में आईं और मैंने तुम्हारी पूजा की । तब तुम दोनों में से एक देवी ने कृपा करके मेरे शीश पर हाथ रक्खा है उसी से मुझको ज्ञान प्रकाश हुआ है जैसे सूर्य के प्रकाश से कमल प्रफुल्लित होता है वैसे ही मेरा हृदय देवी के प्रकाश से प्रफुल्लित हुआ है । इनकी कृपा से मैं कृतकृत्य हुआ और अब मेरा सब संताप नष्ट होकर निर्वाण, समता, सुख और निर्मल पद को प्राप्त हुआ हूँ । सरस्वती बोली, हे राजन्! जो कुछ तुझको भासा है वह भ्रममात्र है और नाना प्रकार के व्यवहार और लोका न्तर भी भ्रममात्र हैं, क्योंकि वहाँ तुझको मृतक हुए अभी एक मुहूर्त व्यतीत हुआ है और इसी अनन्तर में उसी मण्डपाकाश में तुझको यह जगत् भासा । पद्म राजा की वह सृष्टि ब्राह्मण के मण्डप में स्थित है । और यहाँ तुझको नदियाँ, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदिक भूत सम्पूर्ण जगत् भासि आये हैं । हे राजन्! मृत्यु -मूर्छा के अनन्तर कभी वही जगत् भासता है, कभी और प्रकार भासता है और कभी पूर्व-अपूर्व भी भासता है । यह केवल मन की कल्पना है, पर वास्तव में असतरूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है । जैसे एक मुहूर्त शयन करके स्वप्न में बहुतेरे वर्षों का क्रम देखता है वैसे ही जगत् का अनुभव होता है । जैसे संकल्पपुर में अपना जीना, मरना और गन्धर्वनगर भ्रममात्र होता है; जैसे नौका में बैठे हुए मनुष्य को तट के वृक्ष चलते हुए भासते हैं । भ्रमण करने से पर्वत, पृथ्वी और मन्दिर भ्रमते भासते हैं और स्वप्न में अपना शिर कटा भासता है वैसे ही यह जगत् भ्रम से भासता है । हे राजन्! अज्ञान से तुझको मिथ्या कल्पना उपजी है; वास्तव में न तू मृतक हुआ और न तूने जन्म लिया, तेरा अपना आप जो शुद्ध विज्ञान शान्तिरूप आत्मपद है उसी में स्थित है । नाना प्रकार का जगत् अज्ञान से भासता है और सम्यक् ज्ञान से सर्वात्मसत्ता भासती है । आत्मसत्ता ही जगत् की नाईं भासती है । जैसे बड़ी मणि की किरणें नाना प्रकार हो भासती हैं सो वह मणि से भिन्न नहीं; वैसे ही आत्मसत्ता का किञ्चन आकाशरूप जगत् भासता है । गिरि और ग्राम किञ्चनरूप हो जितना जगत् विस्तार तुमको भासता है वह लीला और पद्म राजा के मण्डपाकाश में स्थित है और लीला और पद्म की राजधानी उस वशिष्ठ

ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है । हे राजन् यह जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण के हृदय मण्डपाकाश में फुरता है । वह मण्डपाकाश जो आकाश में स्थित है उस में न पृथ्वी है, न पर्वत हैं, न मेघ हैं, न समुद्र हैं और न कोई मुमुक्षु है । केवल शून्य शून्य स्थित है और न कोई जगत् है, न कोई देखनेवाला है-यह सब भ्रान्ति है । हे राजन् यह सब तेरे उस मण्डपाकाश में फुरते हैं । विदूरथ बोले, हे देवि! जो ऐसा ही है तो यह मेरे भृत्य भी अपने आत्म में सत् हैं वा असत् हैं कृपा कर कहिये? देवी बोली, हे राजन्! विदित वेद जो पुरुष है वह शुद्ध बोधरूप है । उसको कुछ भी जगत् सत्यरूप नहीं भासता , सब चिदाकाश रूप ही भासता है । जैसे भ्रम निवृत्त होने पर रस्सी में सर्प नहीं भासता वैसे ही जिन पुरुषों को आत्मबोध हुआ है और जिनका जगत्भ्रम निवृत्त हुआ है उनको जगत् सत् नहीं भासता । जैसे सूर्य की किरणों में जल को असत् जाने तो फिर जल सत् नहीं भासता वैसे ही जिनको आत्मबोध हुआ है और जगत् को असत् जानते हैं उनको सत् नहीं भासता । हे राजन् जैसे स्वप्न में कोई भ्रम से अपना कटा शीश देखे और जागने पर स्वप्न का मरना नहीं देखता वैसे ही ज्ञानवान् को जगत् सत् नहीं भासता । जैसे स्वप्न का मरना भ्रम से देखता है वैसे ही अज्ञानी को जगत् सत् भासता है । परन्तु वास्तव में कुछ नहीं, शुद्ध बोध में जगत् भ्रम भासता है । जैसे शरत्काल में मेघ से रहित शुद्ध आकाश होता है वैसे ही शुद्धबोधवालों को अहं त्वं आदि व्यर्थ शब्द का अभाव होता है । हे राजन्! तुम और तुम्हारे भृत्य इत्यादि जो यह सृष्टि है वह सब आत्मा से फुरे हैं और वास्तव में कुछ नहीं हुआ । केवल आत्मसत्ता अपने आपमें स्थित है और भ्रम से और कुछ भासता है, पर शुद्धविज्ञान घनरूप ही उसका शेष रहता है । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि इस प्रकार जब देवी और विदूरथ का संवाद वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त होकर सायंकाल का समय हुआ और सब सभा परस्पर नमस्कार करके स्नान को गई । जब रात्रि बीत गई सूर्य की किरणों के निकलते ही सब अपने स्थानों पर आके बैठे ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो पुरुष अबोध हैं अर्थात् परमपद में स्थित नहीं हुए उनको जगत् वज्रसार की नाई दृढ़ है । जैसे मूर्ख बालक को अपनी परछाहीं वैताल भासता है वैसे ही अज्ञानी को असत् रूप जगत् सत् हो भासता है और जैसे मरुस्थल में मृग को असत् रूप जलाभास सत्य हो भासता है; स्वप्ने में क्रिया अर्थभ्रम करके भासते हैं; जिसको सुवर्णबुद्धि नहीं होती उसको भूषणबुद्धि सत् भासती है और जैसे नेत्र दूषण से आकाश में मुक्तमाला भासती हैं वैसे ही असम्यकदर्शी को असत् रूप जगत् सत् हो भासता है । हे रामजी! यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्ना है: अहन्ता से दृढ़ जाग्रतरूप हो भासता है और वास्तव में कुछ उपजा नहीं । परमचिदाकाश

सर्वथा शान्ति और अचिन्त्य चिन्मात्र स्वरूप सर्वशक्ति सर्व आत्मा ही है; जहाँ जैसा स्पन्द फुरता है वैसा ही जगत् होकर भासता है जैसे स्वप्नसृष्टि भासती है वह स्वप्नभ्रम चिदाकाश में स्थित है । उस चिदाकाश में एक स्वप्नपुर फुरता है और वहाँ दृष्ट हो दृश्य को देखता है । वह दृष्ट और दृश्य दोनों चेतन संविद में आभासरूप हैं जैसे ही यह जगत् भी आभासरूप है । हे रामजी! सर्ग का आदि जो शुद्ध आत्मसत्ता थी उसमें आदि संवेदन स्पन्द हुआ है वहाँ ब्रह्माजी हैं और उसी के संकल्प में यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है । यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्न की नाई है; उस स्वप्नरूप में तुम्हारा सद्भाव हुआ है । जैसे तुम हो जैसे ही और भी हैं । जैसे स्वप्न में स्वप्ननगर को और स्वप्ना हो और जैसे स्वप्ननगर वास्तव सत् नहीं होता जैसे ही यह जगत् भी जो दृष्टि आता है भ्रममात्र है । जैसे स्वप्न में असत् ही सत् होके भासता है जैसे ही यह भी अहं त्वं आदि भासते हैं और जैसे स्वप्न में सब कर्म होते हैं जैसे ही यह भी जानो । इतना सुन रामजी ने पूछा, हे भगवन्! स्वप्न से जब मनुष्य जागता है तब स्वप्न के पदार्थ उसे असत् रूप हो भासते हैं, पर ये तो ज्यों के त्यों रहते हैं और जब देखिये तब ऐसे ही हैं, फिर आप जाग्रत् और स्वप्न को कैसे समान कहते हैं । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसा स्वप्न है वैसा ही जाग्रत् है; स्वप्न और जाग्रत् में कुछ भेद नहीं । स्वप्न को भी असत् तब जानता है जब जागता है; जब तक जागता नहीं तब तक असत् नहीं जानता जैसे ही मनुष्य भी जब तक आत्मपद में नहीं जागता तब तक असत् नहीं भासता और जब आत्मपद में जागता है तब यह जगत् भी असत् रूप भासता है । हे रामजी! यह जगत् असत् रूप है और भ्रम से सत् की नाई भासता है । जैसे स्वप्न की स्त्री असत् रूप होती है और उसको पुरुष सत् रूप जानता है जैसे ही यह जगत् भी असत् रूप सत् हो दिखाई देता है । केवल आभासरूप जगत् है और आत्मसत्ता सर्वत्र सर्वदा अद्वैतरूप है, जहाँ जैसा चिन्तता है वहाँ वैसा ही होके भासता है । जैसे डिब्बे में अनेक रत्न होते हैं उसमें जिसको चाहता है लेता है, जैसे ही सर्वगत चिदाकाश, जहाँ जैसा चिन्तता है वहाँ वैसा हो भासता है । हे रामजी! अब पूर्व का प्रसंग सुनो । जब देवी ने विदूरथ पर अमृत के समान ज्ञानवचनों की वर्षा की तब उसके हृदय में विवेक रूप सुन्दर अंकुर उत्पन्न हुआ । तब सरस्वती ने कहा, हे राजन् जो कुछ कहना था वह मैं तुझसे कह चुकी । अब तुम रणसंग्राम में मृतक होगे यह मैं जानती हूँ । अब हम जाती हैं, लीलादिक को दिखाने के लिये हम आई थीं सो सब दिखा चुकीं । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार मधुरवानी से सरस्वती ने कहा तब बुद्धिमान् राजा विदूरथ बोला, हे देवि! बड़ों का दर्शन निरर्थक नहीं होता वह तो महाफल देने वाला है । हे देवि! जो अर्थी मेरे पास आता है उसे मैं निरर्थक नहीं जाने देता और सबका अर्थ पूरा करता हूँ । तुम तो साक्षात् ईश्वरी हो इसलिए मुझे यह वर दो कि देह को त्यागकर मैं लोकान्तर में पद्म के शव में प्राप्त होऊँ और मेरे मन्त्री और लीला भी मेरे साथ हों । हे देवि! जो भक्त शरण में प्राप्त होता है उसको बड़े लोग त्याग नहीं करते, बल्कि उसके सब अर्थ सिद्ध करते हैं । सरस्वती बोली, हे राजन्! ऐसा ही होगा । तू पद्म राजा के शरीर में प्राप्त होगा और बोधसहित निश्चिन्त होकर राज्य करेगा । हमारी

आराधना किसी को व्यर्थ नहीं होती । जैसी कामना करके कोई हमको सेवता है वैसे ही फल को प्राप्त होता है ।

सरस्वती बोली, हे राजन्! अब तुम रण में मृतक होके पूर्व पद्म राजा के शरीर में प्राप्त होगे और यह तुम्हारी भार्या और मन्त्री भी तुम्हें वहाँ प्राप्त होंगे । हे राजन्! तुम ऐसे चले जावोगे जैसे वायु चली जाती है । जैसे अश्व और मृग ऊँट और हाथी का संग नहीं करते वैसे ही तुम्हारा हमारा क्या संग है - इससे हम जाती हैं । इतना कह कर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब एक पुरुष ने आकर कहा, हे राजन्! जैसे प्रलयकाल में मन्दराचल और अस्ताचल आदि पर्वत वायु से उड़ते हैं वैसे ही शत्रु चले आते हैं और चक्र गदा आदि शस्त्रों की वर्षा करते हैं । जैसे महाप्रलय में सब स्थान जल से पूर्ण हो जाते हैं वैसे ही सेना से सब स्थान पूर्ण हुए हैं और उन्होंने अग्नि भी लगाई है उससे स्थान जलने लगे हैं । वे शब्द करते हैं और नदी के प्रवाह की नाई बाण चले आते हैं । अग्नि ऐसी लगी है जैसे महाप्रलय की बड़वाग्नि समुद्र को सोखती है । तब दोनों देवियाँ और राजा और मन्त्री ऊँचे चढ़ के और झरोखे में बैठ के क्या देखने लगे कि जैसे प्रलयकाल में मेघ चले आते हैं वैसे ही सेना चली है और जैसे प्रलय की अग्नि से दिशा पूर्ण होती है वैसे ही अग्नि की ज्वाला से सब दिशाएँ पूर्ण हुई हैं और उससे ऐसी चिनगारियाँ उड़ती हैं मानों तारागण गिरते हैं और अंगारों की वर्षा होती है उससे जीव जलते हैं । सुन्दर स्त्रियाँ जो नाना प्रकार के भूषणों से पूर्ण थीं वह तृणों की नाई अग्नि में जलती हैं और पुरुषों की देह और वस्त्र भी जलते हैं । सब हाय हाय शब्द करते हैं और जलते जलते बाँधव, पुत्र और स्त्रियों को ढूँढते हैं । हे रामजी! यह आश्चर्य देखो कि ऐसे स्नेह से जीव बाँधे हुए हैं कि मृत्युकाल में भी स्नेह नहीं त्याग सकते पर सेना के लोग दूसरे लोगों को मार के स्त्रियों को ले जाते हैं । हे रामजी! उस काल रणभूमि में चहुँ ओर शब्द छा गया; कोई कहता था हाय पिता; कोई कहता था हाय माता; हाय भाई; हाय पुत्र; हाय स्त्री । घोड़े, गौ, बैल, ऊँट आदि पशु इकट्ठे मिल गये और अग्नि की ज्वाला वृद्धि होती जाती है और बड़ा क्षोभ उदय हुआ । जैसे महाप्रलय की अग्नि होती है वैसे ही सब स्थान अग्नि से पूर्ण हुए और उनमें अनेक जीव और स्थान दग्ध होने लगे ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार राजा नगर को देखता था कि लीला सहेलियों सहित अपने दूसरे स्थान से जहाँ राजा विदूरथ था आई । उसके महासुन्दर भूषण कुछ टूटे हुए और कुछ शिथिल थे । एक सहेली ने कहा, हे राजन्! तुम्हारे अन्तःपुर में जो स्त्रियाँ थीं उन्हें शत्रु ले

गये हैं, पर इस लीला रानी को हम बड़े यत्न से चुराकर ले आई हैं और दूसरे लोगों को उन शत्रुओं ने बड़ा कष्ट दिया है। तुम्हारे द्वारे पर जो सेना बैठी है उसको भी वह चूर्ण करते हैं और समस्त नगर को जलाकर लूट लिया है। हे रामजी! जब इस प्रकार सहेली ने राजा से कहा तब राजा ने सरस्वतीजी से कहा, हे देवीजी! यह लीला तुम्हारी शरण आई है और तुम्हारे चरणकमलों की भ्रमरी है; इसकी रक्षा करो, और अब मैं युद्ध करने जाता हूँ। जब इस प्रकार कहकर राजा क्रोध संयुक्त युद्ध करने को रण की ओर मत्त हाथी के समान चला तब देवी के साथ जो प्रथम लीला थी उसने क्या देखा कि उस लीला का अपनी ही मूर्ति सा सुन्दर आकार है। जैसे आरसी में प्रतिबिम्ब होता है वैसे ही देखके कहने लगी, हे देवि! इसमें क्योंकर प्राप्त हुई? जब मैं प्रथम आई थी तब तो मुझको मन्त्री, टहलुये और अनेक पुरवासी देखते थे और वह संशय मैंने तुमसे निवृत्त किया था; फिर मैं इस प्रकार कैसे आन स्थित हुई। यह दृश्य रूप कैसा आदर्श है जिसके भीतर बाहर प्रतिबिम्ब होता है? यह मन्त्री और टहलुये और मेरा यह स्वरूप क्या है और दृश्यभाव हो क्योंकर भासता है? मेरा यह संशय दूर करो! देवी बोली हे लीले! जैसे चित्तसंवित् में स्वप्न फुरता है वैसे ही तत्काल सिद्ध होता है। जिस अर्थ को चिन्तन करनेवाला चित्तसंवित् शरीरको त्यागता है उसी अर्थ को प्राप्त होता है और उसी क्षण में देश काल और पदार्थ की दीर्घता होती है। जैसे स्वप्न सृष्टि फुर आती है वैसे ही परलोकसृष्टि भास आती है। हे लीले! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था तब तुझ में और मन्त्रियों में इसका बहुत स्नेह था इससे वही रूप सत् होकर अपनी वासना के अनुसार उसे भासा है जैसे संकल्पपुर और स्वप्नसेना भासती है वैसे ही यह "यह देश काल और पदार्थ" भासे हैं। हे लीले! जो कोई असत् पदार्थ सत् रूप होकर भासते हैं वह अज्ञानकाल में ही भासते हैं, ज्ञानकाल में सब तुल्य हो जाते हैं; न्यूनाधिक कोई नहीं रहता; जाग्रत में स्वप्न मिथ्या भासता और स्वप्न में जाग्रत का अभाव हो जाता है। जाग्रत शरीर मृतक में नष्ट हो जाता है; मृतक जन्म में असत् होजाता है और मृतक में जन्म असत् हो जाता है। हे लीले। जब इस प्रकार इनको विचारकर देखिये तो सब अवस्था भ्रान्तिमात्र हैं, वास्तव में कोई सत्य नहीं। हे लीले! सर्ग से आदि महाप्रलय पर्यन्त कुछ नहीं हुआ! सदा ज्यों का त्यों ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है; जगत् आभासमात्र है और अज्ञान से भासता है। जैसे आकाश में तरुवरे भासते हैं वैसे ही आत्मा में जगत् भ्रम से भासता है और वास्तव में कुछ भी नहीं जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लीन होते हैं वैसे ही आत्मा में जगत् उपज कर लीन होते हैं। इससे 'अहं' 'त्वं' आदि शब्द भ्रान्तिमात्र हैं। हे लीले! यह जगत् मृगतृष्णा के जलवत् है। इसमें आस्था करनी अज्ञानता है और भ्रान्ति भी कुछ वस्तु नहीं। जैसे घनतम में यक्ष भासता है पर वह यक्ष कोई वस्तु नहीं है, ब्रह्म सत्ता ज्यों की त्यों है, वैसे ही भ्रान्ति भी कुछ वस्तु नहीं। जन्म, मृत्यु और मोह सब असत् रूप हैं। 'अहं' 'त्वं' आदि जितने शब्द हैं उनका महा प्रलय में अभाव हो जाता है उसके पीछे जो शुद्ध शान्तरूप है अब भी वही जान कि ज्यों की त्यों ब्रह्मसत्ता है। हे लीले! यह जो पृथ्वी आदि भूत भासते हैं सो भी संवित रूप हैं क्योंकि जब चित्तसंवित्

स्पन्दरूप होता तब यह जगत् होके भासता है और इसी कारण संवित्‌रूप है । हे लीले! जीवरूपी समुद्र में जगत्‌रूप तरंग उत्पन्न होते हैं और लीन भी होते हैं, पर वास्तव में जलरूप हैं और कुछ नहीं । जैसे अग्नि में उष्णता होती है वैसे ही जीव में सर्ग है जो ज्ञानवान् है उसको सर्वात्मा भासता है और अज्ञानी को भिन्न भिन्न कल्पना होती है । हे लीले! जैसे सूर्य की किरणों में त्रस रेणुभासते हैं, पवन में स्पन्द होता है और उसमें सुगन्ध होती है सो सब निराकार है वैसे ही जगत् भी आत्मा में निर्वपु है । भाव अभाव; ग्रहण त्याग; सूक्ष्म स्थूल; चर अचर इत्यादि सब ब्रह्म में आभास हैं । हे लीले! यह जगत् जो साकाररूप भासता है सो आत्मा से भिन्न नहीं । जैसे वृक्ष के अंग पत्र , फल टासरूप हो भासते हैं वैसे ही ब्रह्मसत्ता ही जगत्‌रूप होकर भासती है और कुछ नहीं । जैसे चेतन संवित् में जैसा स्पन्द फुरता है वैसे ही होकर भासता है, पर वह आकाशरूप संवित् ज्यों की त्यों है, उसमें और कल्पना भ्रममात्र है । हे लीले! यह जो जगत् भासता है वह न सत् है और न असत् है । जैसे रस्सी में भ्रम से सर्प भासता है वैसे ही आत्मा में जगत् भासता है । जिसको असम्यक्‌ज्ञान होता है उसको रस्सी में सर्प भासता है तो वह असत् न हुआ और जिसको सम्यक् बोध होता है उसको सर्प सत् नहीं । ऐसे ही अज्ञान से जगत् असत् नहीं भासता और आत्मज्ञान होने से सत् नहीं भासता, क्योंकि कुछ वस्तु नहीं है । हे लीले! जैसे जिसके अन्तःकरण में स्पन्द फुरता है उसका वह अनुभव करता है । जब यह जीव मृतक होता है तब इसको एक क्षण में जगत् फुर आता है । किसी को अपूर्वरूप फुर आता है; किसी को पूर्वरूप फुर आता है और किसी को अपूर्व मिश्रित फुर आता है । इस कारण तेरे भर्ता को भी वही मन्त्री, स्त्री और सभा वासना के अनुसार फुर आये हैं, क्योंकि आत्मा सर्वत्ररूप है, जैसा-जैसा इस में तीव्र स्पन्द फुरता है वैसे ही होकर भासता है । हे लीले! जैसे अपने मनोराज में जो प्रतिभा उदय हो आती है वह सत्‌रूप हो भासती है वैसे ही यह जो लीला तेरे सम्मुख बैठी है सो यही हुई है और तेरे भर्ता की जो तेरे में तीव्र वासना थी इससे उसको तेरा प्रतिबिम्बरूप होकर यह लीला प्राप्त हुई और तेरा सा शील, आचार, कुल, वपु इसको प्रतिबिम्बित हुआ है । हे लीले! सर्वगत संवित् आकाश है । जैसा जैसा उसमें होता है वैसे वैसे चिद्रूप आदर्श में प्रतिबिम्ब भासता है । इस सब जगत् का चेतन दर्पण में प्रतिबिम्ब होता है; वास्तव में तू और मैं, जगत्, आकाश, भवन, पृथ्वी, राजा आदि सब आत्मरूप है । आत्मा ही जगत्‌रूप हो भासता है । जैसे बेलि से मज्जा भिन्न नहीं वैसे ही यह जगत् ब्रह्मस्वरूप है ।

देवी बोली, हे लीले! तेरा भर्ता राजा विदूरथ रण में संग्राम करके शरीर त्यागेगा और उसी अन्तःपुर में प्राप्त होकर राज्य करेगा । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी जब इस प्रकार

देवी ने कहा तब विदूरथ के पुरवाली लीला ने हाथ जोड़ के देवी को प्रणाम किया और कहा, हे देवि! भगवति! मैंने जतिरूप का नित्य पूजन किया और उसने स्वप्न में मुझको दर्शन दिया । जैसे वह ईश्वरी थी वैसे ही तुम भी मुझको दृष्टि आती हो । इससे मुझ पर कृपा पर कृपा करके मनवाच्छित्त फल दो । तब देवी अपने भक्त पर प्रसन्न होकर बोली, हे लीले! तूने अनन्य होकर मेरी भक्ति की है और उससे तेरा शरीर भी जीर्ण हो गया है अब मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ जो कुछ तुझको वाञ्छित हो वह वर माँग । लीला बोली, हे भगवति! जब मेरा भर्ता रण में देह त्याग दे तो मैं इसी शरीर से उसकी भार्या होऊँ । देवी बोली, तूने भावना सहित भली प्रकार पुण्यादिकों से निर्विघ्न मेरी सेवा की है इससे ऐसा ही होगा । तब पूर्व लीला ने कहा, हे देवि! तुम तो सत्य संकल्प, सत्यकाम और ब्रह्मस्वरूप हो मुझको उसी शरीर से तुम विदूरथ के गृह में वशिष्ठ ब्राह्मण की सृष्टि में मुझे क्यों न ले गईं? देवी बोली, हे लीले! मैं किसी का कुछ नहीं करती । सब जीवों के संकल्प मात्र देह हैं और मैं जसिरूप हूँ । एक एक जीव के अन्तर चैतन्यमात्र देवता होकर मैं स्थित हूँ; जो-जो भावना करता है वैसे ही उसको सिद्धता होती है । हे लीले! जब तूने मेरा आराधन किया था तब तूने यह प्रार्थना की थी कि मेरे भर्ता का जीव इसी आकाशमण्डप में रहे और मुझको ज्ञान की भी प्राप्ति हो । उसी के अनुसार मैंने तुझको ज्ञान का उपदेश दिया और तुझको ज्ञान प्राप्त हुआ । इसी निमित्त उसने पूजन किया था उससे उसके यही प्राप्त हुआ है कि देहसहित भर्ता के साथ जावेगी । जैसा-जैसा चित्त संवित् में स्पन्द दृढ़ होता है वैसे ही वैसी सिद्धता होती है । हे लीले! जो तप करते हैं उनकी दृढ़ता से चिदात्मा ही देवतारूप होके फल को देते हैं । जैसे-जैसे संकल्प की तीव्रता किसी को होती है चैतन्य संवित से उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है । चित्तसंवित् से भिन्न किसी से किसी को कदाचित् कुछ फल नहीं प्राप्त होता । आत्मा सर्वगत और सर्व के अन्तःकरण में स्थित है । जैसे उसमें चैत्यता होती है उसको वैसा ही शुभाशुभ भाव प्राप्त होता है ।

रामजी बोले, हे भगवन्! राजा विदूरथ जब देवी से कहकर संग्राम में गया तो उसने वहाँ क्या किया! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब राजा गृह से निकला तो तारों में चन्द्रमा के सदृश सम्पूर्ण सेना से सुशोभित हुआ और रथ पर आरूढ़ होकर सभासहित संग्राम में आया वह रथ मोती और मणियों से पूर्ण था और उसमें आठ घोड़े लगे थे जो वायु से भी तीक्ष्ण चलते थे और उसमें पाँच ध्वजा थीं । उस रथ पर आरूढ़ हो राजा इस भाँति संग्राम में आया जैसे सुमेरु पर्वत पंखों से समुद्र में जा पड़े । तब जैसे प्रलयकाल में समुद्र इकट्ठे हो जाते हैं वैसे ही दोनों सेनाएँ इकट्ठी हो गईं और बड़ा युद्ध होने लगा और मेघों की नाईं योधों के शब्द होने लगे । जैसे मेघ से

बूंदों की वर्षा होती है और अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं जैसे ही शस्त्रों की वर्षा होने लगी । जैसे प्रलयकाल की बड़वानल अग्नि होती है जैसे ही शस्त्रों से अग्नि निकलती थी और उन शस्त्रों से अनेक जीव मरे । इस प्रकार जब बड़ा युद्ध होने लगा तब विदूरथ की सेना कुछ निर्बल हुई और ऊर्ध्व में जो दोनों लीला देवी की दिव्य दृष्टि से देखती थीं उन्होंने कहा, हे देवि! तुम तो सर्वशक्तिमान हो और हमारे पर तुम्हारी दया भी है हमारे भर्ता की जय क्यों नहीं होती इसका कारण कहो? देवी बोली, हे लीले! विदूरथ के शत्रु राजा सिद्ध ने जय के निमित्त चिरकाल पर्यन्त मेरी पूजा की है और तुम्हारे भर्ता ने जय के निमित्त पूजा नहीं की, मोक्ष के निमित्त की है इससे जीत सिद्ध राजा की होगी और तेरे भर्ता को मोक्ष की प्राप्ति होगी । हे लीले! जिस जिस निमित्त कोई हमारी सेवा करता है हम उसको वैसा ही फल देती हैं । इससे राजा सिद्ध विदूरथ को जीतकर राज्य करेगा । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! फिर सेना को सब देखने लगीं और दोनों राजों का परस्पर तीव्र युद्ध होने लगा । दोनों राजों ने ऐसे बाण चलाये मानों दोनों विष्णु हो खड़े हैं । विदूरथ ने एक बाण चलाया उसके सहस्र हो गये और उसके आगे जाकर लाख हो गये और परस्पर युद्ध करते करते टुकड़े टुकड़े होके गिर पड़े । ऐसे दूर से दूर बाण चले जाते थे कि जैसे निर्वाण किया दीपक नहीं भासता । तब राजा सिद्ध ने मोहरूपी अस्त्र चलाया और उसके आने से विदूरथ के सिवा सब सेना मोहित हुई । जैसे उन्मत्तता से कुछ सुधि नहीं रहती जैसे ही उनको कुछ सुधि न रही और परस्पर देखते ही रह गये मानों चित्र लिखे हैं । तब राजा विदूरथ को भी मोह का आवेश होने लगा तो उसने प्रबोधरूपी शस्त्र चलाया उससे सबका मोह छूट गया और जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं जैसे ही सबके हृदय प्रफुल्लित हो गये । तब सिद्ध राजा ने नागास्त्र बाण चलाया उससे अनेक ऐसे नाग निकल आये मानों पर्वत उड़ आते हैं । निदान सब दिशाएँ नागों से पूर्ण हो गईं और उनके मुखसे विष और अग्नि की ज्वाला निकली जिससे विदूरथ की सेना ने बहुत कष्ट पाया तब राजा विदूरथ ने गरुड़ास्त्र चलाया उससे अनेक गरुड़ प्रकट हुए और जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है जैसे ही सर्प नष्ट हुए और नागों को नष्ट करके गरुड़ भी अन्तर्धान हो गये । जैसे संकल्प के त्यागने से संकल्पसृष्टि का अभाव हो जाता है जैसे ही गरुड़ अन्तर्धान हो गये और जैसे स्वप्न से जागे हुए को स्वप्ननगर का अभाव हो जाता है जैसे ही गरुड़ों का अभाव हो गया । फिर जब कोई बाण सिद्ध चलावे तो विदूरथ उसको नष्ट करे जैसे सूर्य तम को नष्ट करे और उसने बाणों की बड़ी वर्षा की उससे सिद्ध भी क्षोभ को प्राप्त हुआ । तब पिछली लीला ने झरोखे से देखके देवीजी से कहा हे देवि! अब मेरे भर्ता की जय होती है । देवी सुनके मुसकराई पर मुख से कुछ न कह हृदय में विचारा कि जीव का चित्त बहुत चञ्चल है, ऐसे देखते ही थे कि सूर्य उदय हुए मानों सूर्य भी युद्ध का कौतुक देखने आये हैं-और सिद्ध ने तमरूप अस्त्र चलाया जिससे सर्वदिशा श्याम हो गईं और कुछ भी न भासित होता था - मानों काजल की समष्टिता इकट्ठी हुई है । तब विदूरथ ने सूर्यसा प्रकाशरूपी अस्त्र चलाया जिससे सब तम नष्ट हो गया । जैसे शरदकाल में सब घटा नष्ट हो जाती

हैं, केवल शुद्ध आकाश ही रहता है जैसे आत्मज्ञान से लोभा दिक का ज्ञानी को अभाव हो जाता है और जैसे लोभरूपी काजल के निवृत्त होने से ज्ञान वान् की बुद्धि निर्मल होती है वैसे ही प्रकाश से तम नष्ट हो गया और सब दिशा निर्मल हुई । जैसे अगस्त्यमुनि समुद्र को पान कर गये थे वैसे ही प्रकाश तम का पान कर गया तब सिद्ध ने वैतालरूपी अस्त्र चलाया जिससे विदूरथ की सेना मोहित हो गई और उसमें से महाविकराल और परछाहीं समान मूर्ति धारण किये ऐसे श्यामरूप वैताल भासने लगे, जो ग्रहण न किये जावें और जीव के भीतर प्रवेश कर जावें । जिनके रहने का स्थान शून्य मन्दिर, कीचड़ और पर्वत हैं, शस्त्र से निकलकर विदूरथ की सेना को दुःख देने लगे । पिशाच वह होते हैं जिनकी शास्त्रोक्त क्रिया नहीं होती और जो मरके भूत, पिशाच और वैताल होते हैं और राग, द्वेष, तृष्णा और भूख से जलते रहते हैं । उनका कोई बड़ा सरदार विदूरथ के निकट आने लगा तब विदूरथ ने रूपका नामक अस्त्र चलाया और उससे महाभयानकरूप बड़े नख, केश, जिह्वा, उदर और होठसहित नग्नरूप भैरव प्रकट होकर वैतालों को भोजन करने और खप्पर में रक्त भरकर पीने और नृत्य करने लगे और सबको दुःख देने लगे । तब सिद्ध ने क्रोध करके राक्षसरूपी अस्त्र चलाया जिससे एक कोटि भयानकरूप और काले राक्षस पाताल और दिशाओं से निकले जिनकी जिह्वा निकली हुई और ऐसा चमत्कार करते थे जैसे श्याम मेघ में बिजली चमत्कार करती है । वे जिसको देखें उसको मुख में डाल-के ले जावें । उनको देखके विदूरथ की सेना बहुत डर गई, क्योंकि जिसके सम्मुख वे हँसके देखें वह भय से मर जावे । तब राजा विदूरथ ने अपनी सेना को कष्टवान देख विष्णुअस्त्र चलाया जिससे सब राक्षस नष्ट हो गये । फिर राजा सिद्ध ने अग्नि नामक अस्त्र चलाया जिससे सम्पूर्ण दिशाओं में अग्नि फैल गई और लोग जलने लगे । तब राजा विदूरथ ने वरुणरूपी बाण चलाया जिससे जैसे सन्तों के संग से अज्ञानी के तीनों ताप मिट जाते हैं वैसे ही अग्नि का ताप मिट गया । जल से सब स्थान पूर्ण हो गये और सिद्ध की बहुत सेना जल में बह गई । तब सिद्ध ने शोषणमय अस्त्र चलाया जिससे सब जल सूख गया पर कहीं कहीं कीचड़ रह गई । उसने फिर तेजोमय बाण चलाया जिससे कीचड़ भी सूख गई और विदूरथ की सेना गरमी से व्याकुल होकर ऐसी तपने लगी जैसे मूर्ख का हृदय क्रोध से जलता है । तब विदूरथ ने मेघ नामक अस्त्र चलाया जिससे मेघ वर्षने लगे और शीतल मन्द मन्द वायु चलने लगा जैसे आत्मा की ओर आये जीव का संसरना घटता जाता है वैसे ही विदूरथ की सेना शीतल हुई । फिर सिद्ध ने वायुरूपी अस्त्र चलाया जिससे सूखे पत्र की नाईं विदूरथ फिरने लगा । तब विदूरथ ने पहाड़रूपी अस्त्र चलाया जिससे पहाड़ों की वर्षा होने लगी और वायु का मार्ग रुक गया और वायु के क्षोभ मिट जाने से सब पदार्थ स्थिरभूत हो गये । जैसे संवेदन से रहित चित्त शान्त होता है वैसे ही सब शान्त हो गये । जब पहाड़ उड़ उड़ के सिद्ध की सेना पर पड़े तब सिद्ध ने वज्र रूप अस्त्र चलाया जिससे पर्वत नष्ट हुए । जब इस प्रकार वज्र वर्षे तब विदूरथ ने ब्रह्म अस्त्र चलाया जिससे वज्र नष्ट हुए और ब्रह्म अस्त्र अन्तर्धान हो गये । हे रामजी! इस प्रकार परस्पर इनका युद्ध होता था । जो अस्त्र सिद्ध चलावे उसको विदूरथ विदारण

करे और जो विदूरथ चलावे उसको सिद्ध विदारण कर डाले । निदान विदूरथ राजा ने एक ऐसा अस्त्र चलाया कि राजा सिद्ध का रथ चूर्ण हो गया और घोड़े भी सब चौपट कर डाले । तब सिद्ध राजा ने रथ से उतर ऐसा अस्त्र चलाया कि विदूरथ का रथ और घोड़े नष्ट हुए और दोनों ढाल और तलवार लेकर युद्ध करने लगे । फिर दोनों के रथवाहक और रथ ले आये, उसके ऊपर दोनों आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे । विदूरथ ने सिद्ध पर एक बरछी चलाई जो उसके हृदय में लगी और रुधिर चला । तब उसको देख लीला ने देवी से कहा, हे देवि! मेरे भर्ता की जय हुई है । हे रामजी! इस प्रकार लीला कहती ही थी कि सिद्ध ने बरछी चलाई सो विदूरथ के हृदय में लगी और उसको देख के विदूरथ की लीला शोकवान् होकर कहने लगी, हे देवि! मेरा भर्ता है; दुष्ट सिद्ध ने बड़ा कष्ट दिया है । हे रामजी! फिर सिद्ध ने एक ऐसा खड्ग चलाया कि जिससे विदूरथ के पाँव कट गये और घोड़े भी कट गये पर तो भी विदूरथ युद्ध करता रहा । फिर सिद्ध ने विदूरथ के शिर पर खड्ग का प्रहार किया तो वह मूर्छा खाके गिर पड़ा । ऐसे देखके उसके सारथी रथ को गृह में ले आने लगे तो सिद्ध उसके पीछे दौड़ा कि मैं इसका शीश ले आऊँ, परन्तु पकड़ न सका । जैसे अग्नि में मच्छर प्रवेश न कर सकता वैसे ही देवी के प्रभाव से विदूरथ को वह न पकड़ सका ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब सारथी राजा को गृह में ले आया तो स्त्रियाँ, मन्त्री, बान्धव और कुटुम्बी रुदन करने लगे और बड़े शब्द होने लगे । सिद्ध की सेना लूटने लगी हाथी, घोड़े स्वामी बिना फिरते थे । फिर ढिंढोरा फिराया गया कि राजा सिद्ध की विजय हुई । निदान सब ओर से शान्ति हुई । सिद्ध राजा के ऊपर छत्र होने लगा और सब पृथ्वी का राजा वही हुआ । जैसे क्षीरसमुद्र से मन्दराचल निकल के शान्त हुआ वैसे ही सब ओर शान्ति हुई । हे रामजी! जब राजा विदूरथ गृह में आया तब उसकी और दूसरी लीला को देख के प्रबुद्ध लीला कहने लगी, हे देवि! यह शरीर से वहाँ क्योंकर जा प्राप्त होगी? यह तो भर्ता को ऐसे देखके मृतक रूप हो गई है और राजा भी मृत्यु के निकट पड़ा है केवल कुछ ध्वास आते हैं । देवी बोली, हे लीले! यह जितने आरम्भ तू देखती है कि युद्ध हुआ और नाना प्रकार का जगत् है सो सब भ्रान्तिमात्र है और तेरा भर्ता जो पद्म था उसका हृदय जो मण्डपाकाश में था वहीं यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है । पद्म का मण्डपाकाश वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपा काश में स्थित है और वशिष्ठ ब्राह्मण का मण्डपाकाश चिदाकाश के आश्रय स्थित है । हे लीले! यह सम्पूर्ण जगत् वशिष्ठ ब्राह्मण की पुर्यष्टक में स्थित है सो आकाशमें ही आकाश स्थित है । किञ्चन है इससे सम्पूर्ण फुरता है, पर वास्तव में किञ्चन भी कुछ वस्तु नहीं आत्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है । उस आत्मसत्ता में 'अहं' 'त्वं' जगत भ्रमसे भासता है, कुछ उपजा नहीं । हे लीले! उस वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में नाना प्रकार के स्थान हैं और उनमें प्राणी आते जाते और नाना व्यवहार करते भासते हैं जैसे स्वप्नसृष्टि में नाना प्रकार के आरम्भ भासते हैं सो असत् रूप हैं वैसे ही यह जगत् भी असत् रूप

है । हे लीले! न यह दृष्टा है और न आगे दृश्य है; सब भ्रमरूप हैं! दृष्टा, दर्शन, दृश्य त्रिपुटी व्यवहार में है । जो दृश्य नहीं तो दृष्टा कैसे हो? सब असत् रूप है । इनसे हित जो परमपद है वह उदय-अस्त से रहित, नित्य अज, शुद्ध, अविनाशी और अद्वैतरूप अपने आप में स्थित है । जब उसको जानता है तब दृश्य भ्रम नष्ट हो जाता है । हे लीले! दृश्य भ्रम से भासता है वास्तव में न कुछ उपजा है और न उपजेगा । जितने सुमेरु आदिक पर्वत जाल और पृथ्वी आदिक तत्त्व भासते हैं वे सब आकाशरूप हैं । जैसे स्वप्न सृष्टि प्रत्यक्ष भासती है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं वैसे ही इस जगत भी जानो । हे लीले! जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि है परन्तु उसमें सार कुछ नहीं । जैसे केले के थम्भे में सार कुछ नहीं निकलता वैसे ही इस सृष्टि में विचार करने से सार कुछ नहीं निकलता-चित्तसंवेदन के फुरने से भासता है । हे लीले! तेरे भर्ता पद्म की जो सृष्टि है सो वशिष्ठ ब्राह्मण के मण्डपाकाश में स्थित है अर्थात् विदूरथ का जगत् पद्म के हृदय में स्थित है वहाँ तेरा शरीर पड़ा है और राजा पद्म का भी शव पड़ा है । हे लीले! तेरे भर्ता पद्म की सृष्टि हमको प्रदेशमात्र है । उस प्रदेश मात्र में अंगुष्ठ प्रमाण हृदयकमल है; उसमें तेरे भर्ता का जीवाकाश है और उसी में यह जगत् फुरता है सो प्रदेशमात्र भी है और दूर से दूर कोटि योजन पर्यन्त है । मार्ग में वज्रसार की नाई तत्त्वों का आवरण है । उसको लाँघ के तेरे भर्ता की सृष्टि है जहाँ वह शव पड़ा है उसके पास यह लीला जाय प्राप्त हुई । लीला ने पूछा, हे देवि! ऐसे मार्ग को लाँघ के वह क्षण में कैसे प्राप्त हुई और जिस शरीर से जाना था वह शरीर तो यहीं पड़ा है वह किस रूप से वहाँ गई और वहाँ के लोगों ने उसको देखके कैसे जाना है सो संक्षेप से कहो । देवी बोली, हे लीले! इस लीला के वृत्तान्त की महिमा ऐसी है जिसके धारे से यह जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है । उसे मैं संक्षेप से कहती हूँ । हे लीले! जो कुछ जगत् भासता है वह सब भ्रममात्र है यह भ्रमरूप जगत् पद्म के हृदय में फुरता है । उसमें विदूरथ का जन्म भी भ्रममात्र है; लीला का प्राप्त होना भी भ्रम है; संग्राम भी भ्रमरूप है विदूरथ का मरना भी भ्रमरूप है और उसके भ्रमरूप जगत् में तुम हम बैठे हैं । लीला तू भी और राजा भी भ्रमरूप है और मैं सर्वात्मा हूँ- मुझको सदा यही निश्चय रहता है । हे लीले! जब तेरा भर्ता मृतक होने लगा था तब तुझसे उसका स्नेह बहुत था, इसलिये तू महासुन्दर भूषण पहिने हुए वासना के अनुसार उसको प्राप्त हुई है । हे लीले! जब जीव मृतक होता है तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर होता है; फिर वासना से आधिभौतिक होता है । उसी के अनुसार तेरा भर्ता जब मृतक हुआ तब प्रथम उसका अन्तवाहक शरीर था, उससे आधिभौतिक हो गया और जब आधिभौतिक हुआ तब प्रथम उसको जन्म भी हुआ और मरण भी हुआ । जब तेरा भर्ता मृतक हुआ तब उसको अपना जन्म और कुल लीला का जन्म, माता, पिता और लीला के साथ विवाह भास आये । जैसे तू पद्म को भास आई थी वैसे ही वह सब विदूरथ को भास आये । हे लीले! ब्रह्म सर्वात्मा है; जैसा जैसा उसमें तीव्र स्पन्द होता है वैसे ही सिद्ध होता है । मैं जतिरूप चैतन्य शक्ति हूँ, मुझको जैसी इच्छा करके लोग पूजते हैं वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । हे लीले! जैसी जैसी इच्छा कर के कोई हमको पूजता है उसको वैसे ही

सिद्धता प्राप्त होती है । लीला ने जो मुझ से वर माँगा था कि मैं विधवा न होऊँ और इसी शरीर से भर्ता के निकट जाऊँ और मैंने कहा था कि ऐसे ही होगा इसलिये मृत्यु-मूर्छा के अनन्तर उसको अपना शरीर भास आया और अपने शरीर सहित जहाँ तेरे भर्ता पद्म का शव पड़ा था वहाँ मण्डप में वैसे ही शरीर से उसके निकट जा प्राप्त हुई है, हे लीले! उसको यह निश्चय रहा कि मैं उसी शरीर से आई हूँ ।

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जिस प्रकार वह लीला पद्म राजा के मण्डप में जा प्राप्त हुई है वह सुनिये । जब वह लीला मृत्यु-मूर्छा को प्राप्त हुई तो उसके अनन्तर उसको पूर्व के शरीर की नाईं वासना के अनुसार अपना शरीर भास आया और उसने जाना कि मैं देवी का वर पाके उसी शरीर से आई हूँ । वह अन्तवाहक शरीर से आकाश में पक्षी की नाईं उड़ती जाती थी, तब उसको अपने आगे एक कन्या दृष्टि आई । इससे लीला ने कहा, हे देवि! तू कौन है? देवी ने कहा; मैं जसिदेवी की पुत्री हूँ और तुझे पहुँचाने के लिये आई हूँ । लीला ने कहा हे देवीजी । मुझे भर्ता के पास ले चलो । हे रामजी! तब वह कन्या आगे और लीला पीछे हो दोनों आकाश में उड़े और चिरकाल पर्यन्त आकाश में उड़ती गई । पहले मेघों के स्थान मिले, फिर वायु के स्थान मिले, फिर सूर्य का मण्डप और तारामण्डल मिला, फिर और लोकपालों के स्थान ब्रह्मा विष्णु और रुद्र के लोक आये । इन सबको लाँघ महावज्रसार की नाईं ब्रह्माण्ड कपाट आया उसको भी लाँघ गई । जैसे कुम्भ में बरफ डालिये तो उसकी शीतलता बाहर प्रकट होती है वैसे ही वह ब्रह्माण्ड से बाह्य निकल गई । उस ब्रह्माण्ड से दशगुणा जल तत्त्व आया; इसी प्रकार वह अग्नि, वायु और आकाशतत्त्व आवरण को भी लाँघ गई । उसके आगे महाचैतन्य आकाश आया उसका अन्त कहीं नहीं -वह आदि, अन्त और मध्य से रहित है । हे रामजी! जो कोटि कल्प पर्यन्त गरुड़ उड़ते जावें तो भी उसका अन्त न पावें; ऐसे परमाकाश में वह गई और वहाँ इनको कोटि ब्रह्माण्ड दृष्टि आये । जैसे वन में अनेक वृक्षों के फल होते हैं और परस्पर नहीं जानते वैसे ही वह सृष्टि आपको न जानती थी फिर एक ब्रह्माण्डरूपी फल में दोनों प्रवेश कर गई जैसे चींटियाँ फल के मुखमार्ग में प्रवेश कर जाती हैं । उसमें फिर उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित त्रिलोकी देखी । उनके भी लोक लाँघ गई और उनके नीचे और लोकपालों के स्थान लाँघे । फिर वे चन्द्रमा, तारा, वायु और मेघमण्डलों को लाँघ के उतरी और राजा के नगर और उस मण्डपाकाश में जहाँ पद्म राजा का शव फूलों से ढँपा पड़ा था प्रवेश कर गई । इसके अनन्तर वह कुमारी इस भाँति अन्तर्द्धान हो गई जैसे कोई मायावी पदार्थ हो और अन्तर्द्धान हो जावे । लीला पद्म के पास बैठ गई और मन में विचारने लगी कि यह मेरा भर्ता है वहाँ इसने संग्राम किया था, अब शूरमा की

गति को प्राप्त हुआ है और इस परलोक में आय के सोया है । उसके पास मैं भी अपने पास मैं भी अपने शरीर से देवी जी के वर से आन प्राप्त हुई हूँ मेरे ऐसा अब कोई नहीं और मैं बड़े आनन्द को प्राप्त हुई हूँ । हे रामजी! ऐसे विचार के पास एक चमर पड़ा था उसको हाथ में लेके भर्ता के लिये हिलाने लगी । जैसे चन्द्रमा किरणों सहित शोभा पाता है वैसे ही उसके उठाने से वह चमर शोभा पाने लगा । देवी से लीला ने पूछा, हे देवी! यह राजा तो मृतक होता है । इसके श्वास अब थोड़े से रहे हैं जब यहाँ से मृतक होके पद्म के शरीर में जावेगा तब राजा के जागे हुए मन्त्री और नौकर कैसा जानेंगे? देवी बोली, हे लीले! तब मन्त्री और नौकर जो होवेंगे उनको द्वैतकलना कुछ न भासेगी यह क्या आश्चर्य हुआ है । इस वृत्तान्त को तू, मैं और अपूर्व लीला जानेगी और न कोई जानेगा, क्योंकि इसके संकल्प को और कोई कैसे जाने? लीला ने फिर पूछा, हे देवी! अपूर्व लीला जो वहाँ जाय प्राप्त हुई थी उसका शरीर तो यहाँ पड़ा है और तुम्हारा उसको वर भी था तो फिर इस देह के साथ वह क्यों न प्राप्त हुई? देवी बोली, हे लीले! छाया कभी धूप में नहीं जाती और सच झूठ भी कभी इकट्ठा नहीं होते यह आदि नीति है । जैसे जैसे आदि नीति हुई है वैसे ही होता है-अन्यथा नहीं होता । हे लीले! जो पर छाहीं में वैताल कल्पना मिटी तो परछाहीं और वैताल इकट्ठे नहीं होते वैसे ही भ्रमरूप जगत् का शरीर उस जगत् में नहीं जाता और दूसरे के संकल्प में दूसरा अपने शरीर से नहीं जा सकता, क्योंकि वह और शरीर है और यह और शरीर है; वैसे ही राजा के जगत् दर्पण में लीला के संकल्प का शरीर नहीं प्राप्त हुआ । मेरे वर से वह सूक्ष्म देह से प्राप्त हुई । जब उसको मृत्यु की इच्छा प्राप्त हुई तब उसको उसका सा ही अपना शरीर भी भास आया । उसका शरीर संकल्प में स्थित था सो अपना संकल्प वह साथ ले गई है इससे अपने उसी शरीर से वह गई है । उसने आपको ऐसे जाना कि मैं वही लीला हूँ । हे लीले! आत्मसत्ता सर्वात्मरूप है । जैसा जैसा भावना उसमें दृढ़ होती है वैसा ही वैसा रूप हो जाता है । जिसका यह निश्चय हुआ है कि पाञ्चभौतिक रूप हूँ उसको ऐसे ही दृढ़ होता है कि मैं उड़ नहीं सकता । हे लीले! यह लीला तो अविदित वेद थी अर्थात् अज्ञानसहित थी और उसका आधिभौतिक भ्रम नहीं निवृत्त हुआ था, परन्तु मेरा वर था इस कारण उसको मृत्यु-मूर्छा के अनन्तर यह भास आया कि मैं देवी के वर से चली जाऊँगी इस वासना की दृढ़ता से वह प्राप्त हुई है । हे लीले! यह जगत् भ्रान्तिमात्र है । जैसे भ्रम से जेवरी में सर्प भासता है वैसे ही आत्मा में आभासरूप है । उसका अधिष्ठान आत्मसत्ता अपने ही अज्ञान से दूर भासता है । हे लीले! ज्ञानवान् पुरुष सदा शान्तरूप और आत्मानन्द से तृप्त रहते हैं, पर अज्ञानी शान्ति कैसे पावें? जैसे जिसको ताप चढ़ा होता है उसका अन्तःकरण जलता है और तृषा भी बहुत लगती है वैसे ही जिसको अज्ञानरूपी ताप चढ़ा हुआ है उसका अन्तर रागद्वेष से जलता है और विषयों की तृष्णारूपी तृषा भी बहुत होती है । जिसका अज्ञानरूपी तम नष्ट हुआ है उसका अन्तर राग द्वेषादिक से नहीं जलता और उसकी विषयकी तृष्णा भी नष्ट हो जाती है ।

देवी बोली हे लीले! जो पुरुष अविदितवेद है अर्थात् जिसने जानने योग्य पद नहीं जाना वह बड़ा पुण्यवान् भी हो तो भी उसको अन्तवाहकता नहीं प्राप्त होती । अन्तवाहक शरीर भी झूठ है, क्योंकि संकल्परूप है । इससे जितना जगत् तुझको भासता है वह कुछ उपजा नहीं; शुद्ध चिदाकाश सत्ता अपने आपमें स्थिर है । फिर लीला ने पूछा हे देवि! जो यह सब जगत् संकल्पमात्र है तो भाव और अभावरूप पदार्थ कैसे होते हैं? अग्नि उष्णरूप है पृथ्वी स्थिररूप है, बरफ शीतल है, आकाश की सत्ता है, काल की सत्ता है, कोई स्थूल है कोई सूक्ष्म पदार्थ है, ग्रहण, त्याग, जन्म, मरण होता है; और मृतक हुआ फिर जन्मता है इत्यादिक सत्ता कैसे भासती हैं? देवी बोली, हे लीले! जब महाप्रलय होता है तब सब पदार्थ अभाव को प्राप्त होते हैं और काल की सत्ता भी नष्ट हो जाती है । उसके पीछे अनन्त चिदाकाश; सब कलनाओं से रहित और बोधमात्र ब्रह्मसत्ता ही रहती है । उस चैतन्य मात्रसत्ता से जब चित्तसंवित होती है तब चैतन्यसंवित् में आपको तेज अणु जानता है । जैसे स्वप्न में कोई आपको पत्तीरूप उड़ता देखे वैसे ही देखता है । उससे स्थूलता होती है; वही स्थूलता ब्रह्माण्डरूप होती है उससे तेज अणु आपको ब्रह्मारूप जानता है । फिर ब्रह्मारूप होकर जगत् को रचता है जैसे जैसे ब्रह्मा चेतता जाता है वैसे ही वैसे स्थूलरूप होता जाता है । आदि रचनाने जैसा निश्चय किया है कि 'यह ऐसे हो' और 'इतने काल रहे' उसका नाम नीति है । जैसे आदि रचना नियत की है वह ज्यों की त्यों होती है; उसके निवारण करने को किसी की सामर्थ्य नहीं वास्तव में आदि ब्रह्मा भी अकारणरूप है अर्थात् कुछ उपजा नहीं तो जगत् का उपजना मैं कैसे कहूँ हे लीले! कोई स्वरूप से नहीं उपजा परन्तु चेतना संवेदन के फुरने से जगत् आकार होके भासता है उसमें जैसे निश्चय है वैसे ही स्थित है । अग्नि उष्ण ही है; बर्फ शीतल ही है और पृथ्वी स्थितरूप ही है । जैसे उपजे हैं वैसे ही स्थित हैं । हे लीले! जो चेतन है उस पर यह नीति है कि वह उपदेश का अधिकारी है और जो जड़ है उसमें वही जड़ता स्वभाव है । जो आदि चित्संवित् में आकाश का फुरना हुआ तो आकाशरूप होकर ही स्थित हुआ । जब काल का स्पन्द फुरता है तब वही चेतन संवित कालरूप होकर स्थित होता है; जब वायु का फुरना होता है तब वही संवित् वायुरूप होकर स्थित होता है । इसी प्रकार अग्नि, जल, पृथ्वी नानारूप होकर स्थित हुए हैं । स्थूल, सूक्ष्म रूप होकर चेतन संवित् ही स्थित हो रहा है । जैसे स्वप्न में चेतन संवित् ही पर्वत वृक्षरूप होकर स्थित होता है वैसे ही चेतन संवित् जगत् रूप होकर स्थित हुआ है । हे लीले! जैसे आदि नीति ने पदार्थों के संकल्परूप धारे हैं वैसे ही स्थित हैं उसके निवारण करने की किसी की सामर्थ्य नहीं, क्योंकि चेतन का तीव्र अभ्यास हुआ है, जब यही संवित् उलटकर और प्रकार स्पन्द हो तब और ही प्रकार हो; अन्यथा नहीं होता । हे लीले! यह जगत् सत् नहीं । जैसे संकल्पनगर भ्रमसिद्ध है और जैसे स्वप्नपुरुष और ध्याननगर असत् रूप होता है वैसे ही यह जगत् भी असत् रूप है और अज्ञान से सत् की नाईं भासता है । जैसे स्वप्न सृष्टि के आदि में तन्मात्रसत्ता होती है और उस तन्मात्रसत्ता का आभास किंचित्

स्वप्नसृष्टि का कारण होता है वैसे ही यह जाग्रत जगत् के आदि तन्मात्रसत्ता होती है और उससे किञ्चन अकारण रूप यह जगत् होता है । हे लीले! यह जगत् वास्तव में कुछ उपजा नहीं; असत् ही सत् की नाई होकर भासता है । जैसे स्वप्न की अग्नि स्वप्न में असत् ही सत् रूप हो भासती है वैसे ही अज्ञान से यह असत् जगत् सत् भासता है और जन्म, मृत्यु और कर्मों का फल होता है सो तू श्रवण कर । हे लीले! बड़ा और छोटा जो होता है सो देश काल और द्रव्य से होता है । एक बाल्या वस्था में मृतक होते हैं और एक यौवन अवस्था में मृतक होते हैं जिसकी देश काल और द्रव्य की चेष्टा यथाशास्त्र होती है उसकी गति भी शास्त्र के अनुसार होती है और जो चेष्टा शास्त्र के विरुद्ध होती है तो आयु भी वैसी ही होती है । एक क्रिया ऐसी है जिससे आयु वृद्धि होती है और एक क्रिया से घट जाती है । इसी प्रकार देश, काल, क्रिया, द्रव्य, आयु के घटाने बढ़ानेवाली हैं । उनमें जीवों के शरीर बड़ी सूक्ष्म अवस्था में स्थित हैं । यह आदि नीति रची हैं । युगों की मर्यादा जैसे है वैसे ही है । एक सौ दिव्य वर्ष कलियुग के; दो सौ दिव्य वर्ष द्वापर के; तीन सौ त्रेता के और चार सौ सतयुग के-यह दिव्य वर्ष हैं । लौकिक वर्षों के अनुसार चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कलियुग है; आठलाख चौंसठ हजार वर्ष द्वापरयुग है; बारह लाख छानवे हजार वर्ष त्रेता है और सत्रह लाख अट्ठाइस हजार वर्ष सतयुग है । इस प्रकार युगों की मर्यादा है जिनमें जीव अपने कर्मों के फल से आयु भोगते हैं । हे लीले! जो पाप करने वाले हैं वह मृतक होते हैं और उनको मृत्युकाल में भी बड़ा कष्ट होता है । फिर लीला ने पूछा, हे देवि! मृतक होने पर सुख और दुःख कैसे होते हैं और कैसे उन्हें भोगते हैं? देवी बोली, हे लीले! जीव की तीन प्रकार की मृत्यु होती है-एक मूर्ख की, दूसरी धारणाभ्यासी की और तीसरी ज्ञानवान् की । उनका भिन्न-भिन्न वृत्तान्त सुनो । हे लीले! जो धारणाभ्यासी हैं वह मूर्ख भी नहीं और ज्ञानवान् भी नहीं; वह जिस इष्टदेवता की धारणा करते हैं शरीर को त्यागके उसी देवता के लोक को प्राप्त होते हैं और जो ब्रह्माभ्यासी हैं पर उनको पूर्ण दशा नहीं प्राप्त हुई उनका सुख से शरीर छूटता है । जैसे सुषुप्ति हो जाती है वैसे ही धारणाभ्यासी शरीर त्यागता है और फिर सुख भोगकर आत्मतत्त्व को प्राप्त होता है । ज्ञानवान् का शरीर भी सुख से छूटता है; उसको भी यत्र कुछ नहीं होता और उस ज्ञानी के प्राण भी वहीं लीन होते हैं और यह विदेहमुक्त होता है । जब मूर्ख की मृत्यु होने लगती है तो उसे बड़ा कष्ट होता है । मूर्ख वही है जिसकी अज्ञानियों की संगति है; जो शास्त्रों के अनुसार नहीं विचरता और सदा विषयों की ओर धावता और पापाचार करता है । ऐसे पुरुष को शरीर त्यागने में बड़ा कष्ट होता है । हे लीले! जब मनुष्य मृतक होने लगता है तब पदार्थों से आसक्ति बुद्धि जो बँधी थी उससे वियोग होने लगता है और कण्ठ रुक जाता है; नेत्र फट जाते हैं और शरीर की कान्ति ऐसी विरूप हो जाती है जैसे कमल का फूल कटा हुआ कुम्हिला जाता है । अंग टूटने लगते हैं और प्राण नाड़ियों से निकलते हैं । जिन अंगों से तदात्म सम्बन्ध हुआ था और पदार्थों में बहुत स्नेह था उनसे वियोग होने लगता है इससे बड़ा कष्ट होता है । जैसे किसी को अग्नि के कुण्ड में डालने से कष्ट होता है वैसे ही उसको भी कष्ट होता है । सब पदार्थ भ्रम से भासते हैं पृथ्वी आकाशरूप और आकाश पृथ्वीरूप भासते हैं । निदान महाविपर्यय दशा में प्राप्त

होता है और चित्त की चेतनता घटती जाती है । ज्यों ज्यों चित्त की चेतनता घटती जाती है त्यों-त्यों पदार्थ के ज्ञान से अन्धा हो जाता है । जैसे सायंकाल में सूर्य अस्त होता है तो भ्रान्तिमान् नेत्र को दिशा का ज्ञान नहीं रहता वैसे ही इसको पदार्थों का ज्ञान नहीं रहता और कष्ट का अनुभव करता है । जैसे आकाश से गिरता है और पाषाण में पीसा जाता है, जैसे अन्ध-कूप में गिरता है और कोल्हू में पेरा जाता है, जैसे रथ से गिरता है और गले में फाँसी डालके खींचा जाता है; और जैसे वायु से तरंगों में उछलता और बड़वाग्नि में जलता कष्ट पाता है वैसे ही मूर्ख मृत्युकाल में कष्ट पाता है । जब पुर्यष्टक का वियोग होता है तब मूर्च्छा से जड़सा हो जाता है और शरीर अखण्डित पड़ा रहता है । लीला ने पूछा, हे देवि! जब जीव मृतक होने लगता है तब इसको मूर्च्छा कैसे होती है? शरीर तो अखण्डित पड़ा रहता है, कष्ट कैसे पाता है? देवी बोली, हे लीले! जो कुछ जीव ने अहंकारभाव को लेकर कर्म किये हैं वे सब इकट्ठे हो जाते हैं और समय पाके प्रकट होते हैं जैसे बोया बीज समय पाके फल देता है वैसे ही उसको कर्म वासना सहित फल आन प्रकट होता है । जब इस प्रकार शरीर छूटने लगता है तब शरीर की तादात्म्यता और पदार्थों के स्नेह के वियोग से इसको कष्ट होता है । प्राण अपान की जो कला है और जिसके आश्रय शरीर होता है सो टूटने लगता है । जिन स्थानों में प्राण फुरते थे उन स्थानों और नाड़ियों से निकल जाते हैं और जिन स्थानों से निकलते हैं वहाँ फिर प्रवेश नहीं करते । जब नाड़ियाँ जर्जरीभूत हो जाती हैं और सब स्थानों को प्राण त्याग जाते हैं तब यह पुर्यष्टक शरीर को त्याग निर्वाण होता है । जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है और पत्थर की शिला जड़ीभूत होती है वैसे ही पुर्यष्टक शरीर को त्यागकर जड़ीभूत हो जाती है और प्राण अपान की कला टूट पड़ती है । हे लीले! मरना और जन्म भी भ्रान्ति से भासता है-आत्मा में कोई नहीं । संवित्मात्र में जो संवेदनफुरता है सो अन्य स्वभाव से सत्य की नाई होकर स्थित होता है और मरण और जन्म उसमें भासते हैं और जैसी-जैसी वासना होती है उसके अनुसार सुखदुःख का अनुभव करता है । जैसे कोई पुरुष नदी में प्रवेश करता है तो उसमें कहीं बहुत जल और कहीं थोड़ा होता है, कहीं बड़े तरंग होते हैं और कहीं सोमजल होता है पर वे सब सोमजल में होते हैं, वैसे ही जैसी वासना होती है उसी के अनुसार सुख दुःख का अनुभव होता है और अधः, ऊर्ध्व, मध्य, वासनारूपी गढ़े में गिरते हैं । शुद्ध चैतन्यमात्र में कोई कल्पना नहीं अनेक शरीर नष्ट हो जाते हैं और चैतन्यसत्ता ज्यों की त्यों रहती है । जो चैतन्यसत्ता भी मृतक हो तो एक के नष्ट हुए सब नष्ट हो जायें पर ऐसे तो नहीं होता चैतन्यसत्ता से सब कुछ सिद्ध होता है; जो वह न हो तो कोई किसी को न जाने । हे लीले! चैतन्यसत्ता न जन्मती है और न मरती है, वह तो सर्वकल्पना से रहित केवल चिन्मात्र है उसका किसी काल में कैसे नाश हो? जन्ममरण की कल्पना संवेदन में होती है अचेत चिन्मात्र में कुछ नहीं हुआ । हे लीले! मरता वही है जिसके निश्चय में मृत्यु का सद्भाव होता है । जिसके निश्चय में मृत्यु का सद्भाव नहीं वह कैसे मरे? जब जीव को दृश्य का अत्यन्त अभाव हो तब बन्धों से मुक्त हो । वासना ही इनके बन्धन का कारण है; जब वासना से मुक्त होता है तब बन्धन कोई नहीं रहता । हे लीले! आत्मविचार से ज्ञान होता है और ज्ञान से दृश्य का अत्यन्ताभाव होता

है । जब दृश्य का अत्यन्ताभाव हुआ तब सब वासना नष्ट हो जाती हैं । यह जगत् उदय हुआ नहीं परन्तु उदय हुए की नाईं वासना से भासता है । इससे वासना का त्याग करो । जब वासना निवृत्त होगी तब बन्धन कोई न रहेगा ।

लीला ने पूछा, हे देवि! यह जीव मृतक कैसे होता है और जन्म कैसे लेता है, मेरे बोध की वृद्धता के निमित्त फिर कहो? देवी बोली, हे लीले! प्राण अपान की कला के आश्रय यह शरीर रहता है और जब मृतक होने लगता है तब प्राणवायु अपने स्थान को त्यागता है और जिस-जिस स्थान की नाड़ी से वह निकलता है वह स्थान शिथिल हो जाता है । जब पुर्यष्टक शरीर से निकलता है तब प्राणकला टूट पड़ती है और चैतन्यता जड़ीभूत हो जाती है । तब परिवारवाले लोग उसको प्रेत कहते हैं । हे लीले! तब चित्त की चैतन्यता जड़ीभूत हो जाती है और केवल चैतन्य जो ब्रह्मसत्ता है सो ज्यों की त्यों रहती है । जो स्थावर जंगम सर्व जगत् और आकाश, पहाड़, वृक्ष, अग्नि, वायु आदिक सर्व पदार्थों में व्याप रहा है और उदय अस्त से रहित हैं । हे लीले! जब मृत्यु मूर्च्छा होती है तब प्राणपवन आकाश में लीन होते हैं उन प्राणों में चैतन्यता होती है और चैतन्यता में वासना होती है । ऐसी जो प्राण और चैतन्यसत्ता है सो वासना को लेकर आकाश में आकाशरूप स्थित होती है । जैसे गन्ध को लेकर आकाश में वायु स्थित होता है वैसे ही वासना को लेकर चैतन्यता स्थित होती है । हे लीले! उस वासना के अनुसार उसे जगत् फुर आता है वह देश, काल, क्रिया और द्रव्य सहित देखता है । मृत्यु भी दो प्रकार की है एक पापात्मा की और दूसरी पुण्यात्मा की । पापी तीन प्रकार के हैं-एक महापापी, दूसरे मध्यम पापी और तीसरे अल्प पापी । ऐसे ही पुण्यवान् भी तीन प्रकार के हैं-एक महा पुण्यवान्, दूसरा मध्यम पुण्यवान् और तीसरा अल्प पुण्यवान् । प्रथम पापियों की मृत्यु सुनिये । जब बड़ा पापी मृतक होता है तब वह जर्जरीभूत हो जाता है और धन पाषाण की नाईं सहस्रों वर्षों तक मूर्च्छा में पड़ा रहता । कितने ऐसे जीव हैं जिनको उस मूर्च्छा में भी दुःख होता है । बाहर इन्द्रियों को दुःख होता है तब उसके रागद्वेष को लेकर चित्त की वृत्ति हृदय में स्थित होती है वैसे ही पाप वासना का दुःख हृदय में होता है और भीतर से जलता है । इस प्रकार जड़ीभूत मूर्च्छा रहता है । इसके अनन्तर उसको फिर चैतन्यता फुर आती है तब अपने साथ शरीर देखता है । फिर नरक भोगता है और चिरकाल पर्यन्त नरक भोग के बहुतेरे जन्म पशु आदिकों के लेता है और महानीच और दरिद्री निर्धनों के गृह में जन्म लेकर वहाँ भी दुःखों से तप्त रहता है । हे लीले! यह महापापियों की मृत्यु तुझसे कही । अब मध्यम पापी की मृत्यु सुन । जब मध्यम पापी की मृत्यु होती है तब वह भी वृक्ष की नाईं मूर्च्छा से जड़ीभूत हो जाता है और भीतर दुःख से जलता है । जड़ीभूत से थोड़े काल में चिर चेतनता पाता है । फिर नरक भुगतता है और नरक भोग के

तिर्यगादिक योनि भुगतता है । उसके पीछे वासना के अनुसार मनुष्य-शरीर पाता है । अब अल्प पापी की मृत्यु सुनो । हे लीले! जब अल्पपापी मृतक होता है तब मूर्छित हो जाता है और कुछ काल में उसको चेतनता फुरती है । फिर नरक में जाकर भुगतता है; फिर कर्मों के अनुसार और जन्मों को भुगतता है । और फिर मनुष्य शरीर धारता है । हे लीले! यह पापात्मा की मृत्यु कही अब धर्मात्मा की मृत्यु सुन । जो महा धर्मात्मा है वह जब मृतक होता है तब उसके निमित्त विमान आते हैं उन पर आरूढ़ कराके उसे स्वर्ग में ले जाते हैं । जिस इष्टदेवता की वासना उसके हृदय में होती है उसके लोक में उसे ले जाते हैं और उसके कर्मानुसार स्वर्ग सुख भुगतता है स्वर्ग सुख जो गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरा आदिक भोग हैं उनको भोग के फिर गिरता है और किसी फल में स्थित होता है । तब उस फल को मनुष्य भोजन करता है तब वीर्य में जा स्थित होता है और उस वीर्य से माता के गर्भ में स्थित होता है । वहाँ से वासना के अनुसार फिर जन्म लेता है; जो भोग की कामना होती है तो श्रीमान् धर्मात्मा के गृह में जन्म होता है और जो भोग से निष्काम होता है तब सन्तजनों के गृह में जन्म लेता है । अब मध्यम धर्मात्मा की मृत्यु सुनो । हे लीले! जो मध्यम धर्मात्मा मृतक होता है उसको शीघ्र ही चैतन्यता फुर आती है और वह स्वर्ग में जाकर अपने पुण्य के अनुसार स्वर्ग भोग के फिर गिर कर किसी फल में स्थित होता है । जब फिर उस फल को कोई पुरुष भोजन करता है तब पिता के वीर्य द्वारा माता के गर्भ में आता है और वासना के अनुसार जन्म लेता है अल्प धर्मात्मा जब मृतक होता है तब उसको यह फुर आता है कि मैं मृतक हुआ हूँ; मेरे बान्धवों और पुत्रों ने मेरी पिण्डक्रिया की है और पितर लोक में चला जाता हूँ । वहाँ वह पितरलोक का अनुभव करता है और वहाँ के सुख भोग के गिरता है तब धान्य में स्थित होता है । जब उस धान्य को पुरुष भोजन करता है तब वीर्यरूप होके स्थित होता है । फिर वीर्य द्वारा माता के गर्भ में आ जाता है और वासना के अनुसार जन्म लेता है । हे लीले! जब पापी मृतक होता है तब उसको महाक्रूर मार्ग भासता है और उस मार्ग पर चलता है जिसमें चरणों में कण्टक चुभते हैं; शीश पर सूर्य तपता है और धूप से शरीर कष्टवान होता है । जो पुण्यवान् होता है उसको सुन्दर छाया का अनुभव होता है और बावली और सुन्दर स्थानों के मार्ग से यमदूत उसको धर्मराज के पास ले जाते हैं । धर्मराज चित्रगुप्त से पूछते हैं तो चित्रगुप्त पुण्यवानों के पुण्य और पापियों के पाप प्रकट करते हैं और वह कर्मों के अनुसार स्वर्ग और नरक को भुगतता है फिर वहाँ से गिरके धान्य अथवा और किसी फल में आन स्थित होता है । जब उस अन्न को पुरुष भोजन करता है तब वह स्वप्नवासना को लेकर वीर्य में आन स्थित होता है । जब पुरुष का स्त्री के साथ संयोग होता है तब वीर्य द्वारा माता के गर्भ में आता है । वहाँ भी अपने कर्मों के अनुसार माताके गर्भ को प्राप्त होता है और उस माता के गर्भ में इसको अनेक जन्मों का स्मरण होता है । फिर बाहर निकल के महामूढ़ बाल अवस्था धारण करता है; तब उसे पिछली स्मृति विस्मरण हो जाती है और परमार्थ की कुछ सुध नहीं होती केवल क्रीड़ा में मग्न होता है उसमें आगे यौवन अवस्था आती है तो कामादिक

विकारों से अन्धा हो जाता है और कुछ विचार नहीं रहता । फिर वृद्धावस्था आती है तो शरीर महाकृश हो जाता है, बहुत रोग उपजते हैं और शरीर कुरूप हो जाता है । जैसे कमलों पर बरफ पड़ती है वे कुम्हिला जाते हैं वैसे ही वृद्ध अवस्था में शरीर कुम्हिला जाता है और सब शक्ति घटकर तृष्णा बढ़ती जाती है । फिर कष्टवान् होकर मृतक होता है तब वासना के अनुसार स्वर्ग नरक के भोगों को प्राप्त होता है । इस प्रकार संसारचक्र में वासना के अनुसार घटीयन्त्र की नाई भ्रमता है-स्थिर कदाचित् नहीं होता । हे लीले! इस प्रकार जीव आत्मपद के प्रमाद से जन्ममरण पाता है और फिर माता के गर्भ में आके बाल, यौवन, वृद्ध और मृतक अवस्था को प्राप्त होता है फिर वासना के अनुसार परलोक देखता है और जाग्रत को स्वप्ने की नाई भ्रम से फिर देखता है जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर देखता है वैसे ही अपनी कल्पना से जगत्भ्रम फुरता है । स्वरूप में किसीको कुछ भ्रम नहीं आकाशरूप आकाश में स्थित है, भ्रम से विकार भासते हैं । लीला ने पूछा, हे देवी! परब्रह्म में यह जगत् भ्रम से कैसे हुआ है । मेरे बोध को दृढ़ता के निमित्त कहो । देवी बोली, हे लीले! सब आत्म रूप हैं; पहाड़, वृक्ष, पृथ्वी, आकाशादिक स्थावर-जंगम जो कुछ जगत् है वह सब परमार्थघन है और परमार्थसत्ता ही सर्व आत्मा है । हे लीले! उस सत्ता संवित आकाश में जब संवेदन आभास फुरता है तब जगत्भ्रम भासता है । आदि संवेदन जो संवित्मात्र में हुआ है सो ब्रह्मरूप होकर स्थित हुआ है और जैसे वह चेतता गया है उसी प्रकार स्थावर-जंगम होकर स्थित हुआ है । हे लीले! शरीर के भीतर नाड़ी है नाड़ी में छिद्र हैं और उन छिद्रों में स्पन्दरूप होकर प्राण विचरता है उसको जीव कहते हैं । जब यह जीव निकल जाता है तब शरीर मृतक होता है । हे लीले! जैसे-जैसे आदि संवित्मात्र में संवेदन फुरा है वैसे ही वैसे अब तक स्थित है । जब उसने चेता कि मैं जड़ होऊँ तब वह जड़रूप पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, पर्वत, वृक्षादिक स्थित हुए और जब चेतन की भावना की तब चेतनरूप होकर स्थित हुआ । हे लीले! जिसमें प्राणक्रिया होती है वह जंगमरूप बोलते चलते हैं और जिसमें प्राण स्पन्द क्रिया नहीं पाई जाती सो स्थावर पर हैं रूप आत्मसत्ता में दोनों तुल्य हैं; जैसे जंगम हैं वैसे ही स्थावर हैं और दोनों चैतन्य हैं । जैसे जंगम में चैतन्यता है वैसे ही स्थावर में चैतन्यता है । यदि तू कहे कि स्थावर में चेतनता क्यों नहीं भासती तो उसका उत्तर यह है कि जैसे उत्तर दिशा के समुद्रवाले मनुष्य की बोली को दक्षिण दिशा के समुद्रवाले नहीं जानते और दक्षिण दिशा के समुद्रवाले की बोली उत्तर दिशा के समुद्रवाले नहीं समझ सकते वैसे ही स्थावरों की बोली जंगम नहीं समझ सकते और जंगमों की बोली स्थावर नहीं समझ सकते परन्तु परस्पर अपनी-अपनी जाति में सब चेतन हैं उसका ज्ञान उसको नहीं होता और उसका ज्ञान उसको नहीं होता । जैसे एक कूप का दर्दुर और कूप के दर्दुर को नहीं जानता और दूसरे कूप का दर्दुर उस कूप के दर्दुर को नहीं जानता वैसे ही जंगमों की बोली स्थावर नहीं जान सकते और स्थावरों की बोली जंगम नहीं जान सकते । हे लीले! जो आदि संवित् में संवेदन फुरा है वैसे ही रूप होकर महाप्रलय पर्यन्त स्थित है-अन्यथा नहीं होता । जब उस संवित् में आकाश का संवेदन फुरता है तब आकाशरूप होकर स्थित होता

है; जब स्पन्दता को चेतता है तब वायुरूप होकर स्थित होता है; जब उष्णता को चेतता है तब अग्निरूप होकर स्थित होता है; जब द्रवता को चेतता है तब जलरूप होकर स्थित होता है और जब गन्ध की चिन्तवना करता है तब पृथ्वीरूप होकर स्थित होता है । इसी प्रकार जिन जिनको चेतता है वे पदार्थ प्रकट होते हैं । आत्म सत्ता में सब प्रतिबिम्बित हैं । वास्तव में न कोई स्थावर है न जंगम है, केवल ब्रह्मसत्ता ज्यों की त्यों अपने आपमें स्थित है और उसमें भ्रम से जगत् भासते हैं और दूसरी कुछ वस्तु नहीं । हे लीले! अब राजा विदूरथ को देख कि मृतक होता है । लीला ने पूछा, हे देवि! यह राजा पद्म के शरीरवाले मण्डप में किस मार्ग से जावेगा और इसके पीछे हम किस मार्ग से जावेंगे? देवी बोली हे लीले! यह अपनी वासना के अनुसार मनुष्यमार्ग के राह जावेगा । है तो यह चिदाकाशरूप परन्तु अज्ञान के वश इसको दूर स्थान भासेगा और हम भी इसी मार्ग से इसके संकल्प के साथ अपना संकल्प मिलाके जावेंगे । जब तक संकल्प से संकल्प नहीं मिलता तब तक एकत्वभाव नहीं होता । इतना कह वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार देवीजी ने लीला को परम बोध का कारण उपदेश किया कि इतने में राजा जर्जरी भूत होने लगा ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार देवी और लीला देखती थी कि राजा के नेत्र फट गये और शरीर निरस हो गिर पड़ा और श्वास नासिका के मार्ग से निकल गया । तब जैसे रस सहित पत्र और कटा हुआ कमल विरस हो जाता है वैसे ही राजा का शरीर निरस हो गया; जो कुछ चित की चैतन्यता थी वह जर्जरीभूत हो गई ; मृत्यु मूर्च्छारूपी अन्धकूप में जा पड़ा और चेतना और वासनासंयुक्त प्राण आकाश में जा स्थित हुए । प्राणों में जो चेतना थी और चेतना में वासना थी उस चेतना और वासना सहित प्राण जैसे वायु गन्ध को लेकर स्थित होता है आकाश में जा स्थित हुआ । हे रामजी! राजा की पुर्यष्टक तो जर्जरीभूत हो गई परन्तु दोनों देवियाँ उसको दिव्य दृष्टि से ऐसे देखती थीं जैसे भ्रमरी गन्ध को देखती है । राजा एक मुहूर्त पर्यन्त तो मूर्च्छा में रहा फिर उसको चेतनता फुर आई और अपने साथ शरीर देखने लगा उसने जाना कि मेरे बान्धवों ने मेरी पिण्डक्रिया की है उसको मेरा शरीर भया है और धर्मराज के स्थान को मुझे दूत ले चले हैं । हे रामजी! इस प्रकार अनुभव करता वह धर्मराज के स्थान को चला और उसके पीछे देवी, जैसे वायु के पीछे गन्ध चली जाती है, चली, जैसे गन्ध के पीछे भ्रमरी जाती है वैसे ही राजा विदूरथ धर्मराज के पास पहुँच गया । धर्मराज ने चित्रगुप्त से कहा कि इसके कर्म विचार के कहो । चित्रगुप्त ने कहा, हे भगवन्! इसने कोई अपकर्म नहीं किया बल्कि बड़े-बड़े पुण्य किये हैं और भगवती सरस्वती का इसको वर है । इसका शव फूलों से ढका हुआ है; उस शरीर में यह भगवती

के वर से जाकर प्रवेश करेगा । इससे अब और कुछ कहना पूछना नहीं; यह तो देवीजी के वर से बँधा है । हे रामजी! ऐसे कहकर यमराज ने राजा को अपने स्थान से चला दिया । तब राजा आगे चले और उसके पीछे दोनों देवियाँ चलीं । राजा को यह देवियाँ देखती थीं पर राजा इनको न देख सकता था । तब तीनों उस ब्रह्माण्ड को लाँघ, जिसका राज्य विदूरथ ने किया था, दूसरे ब्रह्माण्ड में आये और उसको भी लाँघ के पद्म के राजा के देश में आकर उसके मन्दिर में, जहाँ फूलों से ढका शव था आये । जैसे मेघ से वायु आन मिलता है वैसे ही एक क्षण में देवियाँ आन मिलीं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! वह राजा तो मृतक हुआ था; मृतक होकर उसने उस मार्ग को कैसे पहिचाना? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! वह विदूरथ जो मृतक हुआ था उसकी वासना नष्ट न हुई थी । अपनी उस वासना से यह अपने स्थान को प्राप्त हुआ । हे रामजी! चिद अणु जीव के उदर में भ्रान्तिमात्र जगत् है- जैसे वट के बीज में अनन्त वट वृक्ष होते हैं वैसे ही चिद् अणु में अनन्त जगत् हैं- जो अपने भीतर स्थिर है उसको क्यों न देखे? जैसे जीव अपने जीवत्व का अंकुर देखता है वैसे ही स्वाभाविक चिद् अणु त्रिलोकी को देखता है । जैसे कोई पुरुष किसी स्थान में धन दबा रक्खे और आप दूर देश में जावे तो धन को वासना से देखता है वैसे ही वासना की दृढ़ता से विदूरथ ने देखा और जैसे कोई जीव स्वप्नभ्रम से किसी बड़े धनवान् के गृह में जा उपजता है और भ्रम के शान्त होने पर उसका अभाव देखता है वैसे ही उसको अनुभव हुआ । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जिसकी वासना पिण्डदान क्रिया की नहीं होती वह मृतक होने पर अपने साथ कैसे देह को देखता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! पुरुष जो माता पिता के पिण्ड करता है उनकी वासना हृदय में होती है और वही फल रूप होकर भासती है कि मेरा शिर है; मेरे पीछे मेरे बान्धवों ने पिण्डदान किया है उससे मेरा शरीर हुआ है । हे रामजी! सदेह हो अथवा विदेह अपनी वासना ही के अनुसार अनुभव होता है-भावना से भिन्न अनुभव नहीं होता । चित्तमय पुरुष है; चित्त में जो पिण्ड की वासना दृढ़ होती है तो आपको पिण्डवान् ही जानता है और भावना के वश से असत् भी सत् हो जाता है । इससे पदार्थों का कारण भावना ही है; कारण बिना कार्य का उदय नहीं होता । महाप्रलय पर्यन्त कारण बिना कार्य होता नहीं देखा और सुना भी नहीं । इससे कहा है कि जैसी वासना होती है वैसा ही अनुभव होता है । रामजी ने पूछा हे भगवन्! जिस पुरुष को अपने पिण्डदान आदि कर्मों की वासना नहीं वह जब मृतक होता है तब क्या प्रेतवासना संयुक्त होता है कि मैं पापी और प्रेत हूँ? अथवा पीछे उसके बान्धव जो उसके निमित्त क्रिया कर्म करते हैं और जो बान्धवों ने पिण्डक्रिया की है उससे उसे यह भावना होती है कि मेरा शरीर हुआ है । वह क्रिया उसको प्राप्त होती है वा नहीं होती? अथवा उसके बान्धवों के मन में यह दृढ़ भावना हुई कि इसको शवक्रिया प्राप्त होगी और वह अपने मन में धन अथवा पुत्रादिकों के अभाव से निराश है और किसी प्रभाव से किसी ने पिण्डादिक क्रिया की वह उसको प्राप्त होती है अथवा नहीं होती? आप तो कहते हैं कि भावना के वश से असत् भी सत् हो जाता है यह क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भावना; देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पाँचों से

होती है । जैसी भावना होती है वैसी ही सिद्धि होती है; जिसकी कर्तव्यता बली होती है उसकी जय होती है । पुत्र दारादिक बान्धव सब वासनारूप हैं । जो धर्म की वासना होती है तो बुद्धि में प्रसन्नता उपज आती है और पुण्यकर्मों से पूर्व भावना नष्ट हो शुभगति प्राप्त होती है । जो अति बली वासना होती है उसकी जय होती है । इससे अपने कल्याण के निमित्त शुभ का अभ्यास करना चाहिये । रामजी बोले , हे भगवन्! जो देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा इन पाँचों से वासना होती है तो महाप्रलय और सर्ग का आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं होती तो जहाँ पाँचों कारण नहीं होते और उसकी वासना भी नहीं होती उस अद्वैत से जगद्भ्रम फिर कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! महाप्रलय और सर्ग की आदि में देश, काल, क्रिया, द्रव्य और सम्पदा कोई नहीं रहती और निमित्तकारण और समवायकारण का अभाव होता है । चिदात्ममें जगत् कुछ उजा नहीं और है भी नहीं; वास्तव में दृश्य का अत्यन्त अभाव है और जो कुछ भासता है वह ब्रह्म का किञ्चन है । वह ब्रह्मसत्ता सदा अपने आपमें स्थित है । ऐसे ही अनेक युक्तियों से मैं तुमसे कहूँगा अब तुम पूर्व कथा सुनो । हे रामजी! जब वे दोनों देवियाँ उस मन्दिर, में पहुँची तो क्या देखा कि फूलों से सुन्दर शीतल स्थान बने हुए हैं-जैसे वसन्तऋतु में वन भूमिका होती है-और प्रातःकाल का समय है; सुवर्ण के मंगलरूपी कुम्भ जल से भरे रक्खे हैं; दीपकों की प्रभा मिट गई है; किवाड़ चढ़े हुए हैं, मन्दिरों में सोये हुए मनुष्यों के श्वास आते जाते हैं और महासुन्दर झरोखे हैं । ऐसे बने हुए स्थान शोभा देते हैं सम्पूर्ण कला से चन्द्रमा शोभता है और जैसे इन्द्र के स्थान सुन्दर हैं! जिस सुन्दर कमल से ब्रह्माजी उपजे हैं वैसे ही वे कमल सुन्दर हैं ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब दोनों देवियों में उस शव के पास विदूरथ की लीला को देखा वह उसकी मृत्यु से पहले वहाँ पहुँची है और पूर्वके से वस्त्रभूषण पहिरे हुए पूर्वका सा आचार किये, पूर्व की सी सुन्दर है और पूर्व का सा ही उसका शरीर है । एवं उसका सुन्दर मुख चन्द्रमा की नाई प्रकाशता है और महासुन्दर फूलों की भूमि पर बैठी है । निदान लक्ष्मी के समान लीला और विष्णु के समान राजा को देख; पर जैसे दिन के समय चन्द्रमा की प्रभा मध्यम होती है वैसे ही उन्होंने लीला को कुछ चिन्ता सहित राजा की बाईं ओर एक हाथ चिबुक पर रक्खे और दूसरे हाथ से राजा को चमर करती देखा । पूर्व लीला ने इनको न देखा, क्योंकि ये दोनों प्रबुध आत्मा और सत्संकल्प थीं और वह लीला इनके समान प्रबुध न थी । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! उस मण्डप में पूर्व लीला जो देह को स्थापन कर और ध्यान में विदूरथ की सृष्टि देखने को सरस्वती के साथ गई थी उस देह का आपने कुछ वर्णन न किया कि उसकी क्या दशा हुई और कहाँ गई! वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! लीला कहाँ थी, शरीर कहाँ था और उसकी सत्ता कहाँ थी? वह तो

अरुन्धती के मन में लीला के शरीर की भ्रान्तिप्रतिभा हुई थी । जैसे मरुस्थल में जल की प्रतिभा होती है वैसे ही लीला के शरीर की प्रतिभा उसे हुई थी । हे रामजी! यह आधिभौतिक अज्ञान से भासता है और बोध से निवृत्त हो जाता है । जब उस लीला को बोध में परिणाम हुआ तब उसका आधिभौतिक शरीर निवृत्त हो गया-जैसे सूर्य के तेज से बरफ का पुतला गल जाता है- और अन्तवाहकता उदय हुई । हे रामजी! जो कुछ जगत् है वह सब आकाशरूप है। जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासता है तैसे ही अन्तवाहकता में आधिभौतिकता भ्रम से भासती है । आदि शरीर अन्तवाहक है अर्थात् संकल्पमात्र है उसमें दृढ़ भावना हो गई उससे पृथ्वी आदि तत्त्वों का शरीर भासने लगा । वास्तव में न कोई भूत आदिक तत्त्व है और न कोई तत्त्वों का शरीर है । उसका शव शश के श्रृंगों की नाई असत् है । हे रामजी! आत्मा में अज्ञान से आधिभौतिक भासे हैं । जब आत्मा का बोध होता है तब आधिभौतिक नष्ट हो जाते हैं । जैसे किसी पुरुष ने स्वप्नमें आपको हरिण देखा और जब जाग उठा तब हरिण का शरीर दृष्टि नहीं आया तैसे ही अज्ञान से आधिभौतिकता दृष्टि आई है और आत्मबोध हुए आधिभौतिकता दृष्टि नहीं आती । जब सत्य का ज्ञान उदय होता तब असत् का ज्ञान लीन हो जाता है । जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है और रस्सी के ज्ञान से सर्प का ज्ञान लीन होता है तैसे ही सम्पूर्ण जगत् मन से उदय हुआ है और अज्ञान से आधिभौतिकता को प्राप्त हुआ है । जैसे स्वप्न में जगत् आधिभौतिक हो भासता है और जागे से स्वप्न शरीर नहीं भासता तैसे ही आत्मज्ञान से आधिभौतिकता निवृत्त हो जाती है और अन्तवाहक शरीर भासता है । रामजी बोले, हे भगवन्! योगीश्वर जो अन्तवाहक शरीर से ब्रह्मलोक पर्यन्त आते जाते हैं उनके शरीर कैसे भासते हैं? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अन्तवाहक शरीर ऐसे हैं जैसे कोई पुरुष स्वप्न में हो उसको पूर्व के जाग्रत शरीर का स्मरण हो तब स्वप्न दृष्टि भी आता है पर उसको आकाशरूप जानता है; आधिभौतिकता बोध से नष्ट हो जाती है । जैसे शरत्काल का मेघ देखने मात्र होता है तैसे ही ज्ञानवान् योगीश्वरों का शरीर देखनेमात्र होता है और अदृश्यरूप है; और जो शरीर भासता है पर उसको आकाशरूप ही भासता है । हे रामजी! यह देहादिक आत्मा में भ्रान्ति से दृष्टि आते हैं और आत्मज्ञान से निवृत्त हो जाते हैं जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प भासता है; जब रस्सी का सम्यक्ज्ञान होता है तब सर्पभाव उसका नहीं रहता तैसे ही तत्त्वबोध होने से देह कहाँ हो और देह की सत्ता कहाँ रहे, दोनों का अभाव ही हो, केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता भासती है । रामजी बोले; हे भगवन्! अन्तवाहक से आधिभौतिकरूप होता है वा आधिभौतिक से अन्तवाहकरूप होता है यह मुझसे कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने तुमको बहुत बेर कहा है तुम मेरे कहे को धारण क्यों नहीं करते? मैंने आगे भी कहा है कि जो कुछ जीव है वह सब अन्तवाहक है आधिभौतिक कोई नहीं । आदि में जो शुद्ध संवितमात्र से संवेदन आभास उठा है उससे इस जीव का संकल्परूप अन्तवाहक आदि शरीर हुआ । जब उसमें दृढ़ अभ्यास होता है तब वह संकल्परूपी शरीर आधिभौतिक होकर भासने लगता है । जैसे जल दृढ़ जड़ता से बरफरूप हो जाता है तैसे ही प्रमाद से संकल्प के अभ्यास से आधिभौतिकरूप हो जाता

है । उस आधिभौतिक के तीन लक्षण होते हैं भारी शरीर होता है; कठोर भाव होता है और शिथिल होता है उससे अहं प्रतीति होती है इस कारण आधिभौतिक कहाता है । जब तत्त्व का बोध होता है तब आधिभौतिक आकाशरूप हो जाती है । जैसे स्वप्न में देह से आदि लेकर जगत् बड़ा स्पष्टरूप भासता है और जब स्वप्न में स्वप्न का ज्ञान होता है कि यह स्वप्न है तब वह स्वप्न का शरीर लघु हो जाता है अर्थात् संकल्परूप हो जाता है; तैसे ही परमात्मा के बोध से आधिभौतिक शरीर निवृत्त हो जाता है और संकल्परूप भासता है । हे रामजी! आधिभौतिकता अबोध के अभ्यास से प्राप्त होती है । जब उलट के उसी अभ्यास का बोध हो तब आधिभौतिकता नष्ट हो जावे और अन्तवाहकता उदय हो । हे रामजी जीव एक शरीर को त्याग के दूसरे को अंगीकार करता है-जैसे स्वप्ने से स्वप्नान्तर प्राप्त होता है और जब बोध होता है तब शरीर और कुछ वस्तु नहीं, वही आधिभौतिक शरीर शान्त हो जाता है जैसे स्वप्न से जागके स्वप्नशरीर शान्त हो जाता है । हे रामजी! जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब भ्रममात्र है, अज्ञान से सत् की नाई भासता है । जब आत्मबोध होगा तब सब आकाशरूप होगा ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब वह दोनों देवियाँ अन्तःपुर में गईं तब प्रबुद्ध लीला कहने लगी, हे देवीजी! समाधि में लगे मुझको कितना काल व्यतीत हुआ ? मैं ध्यान से भूपाल की सृष्टि में गई थी और मेरा शरीर यहाँ पड़ा था वह कहाँ गया ? देवी बोली-हे लीले! तुझको समाधि में लगे इकतीस दिन व्यतीत हुए हैं जब तू ध्यान में लगी तब तेरा पुर्यष्टक विदूरथ की सृष्टि में विचरता फिरा जब इस शरीर की वासना तेरी निवृत्त हो गई तब जैसे रस से रहित पत्र सूख जाता है तैसे ही तेरा शरीर निर्जीव होकर गिर पड़ा और जैसे काष्ठ पाषाण होता है तैसे ही हो बरफ की नाई शीतल हो गया । तब देखके सबने विचार किया कि यह मर गई इसको जलाइये और चन्दन और घृत से लपेट के जला दिया। बान्धवजन रुदन करने लगे और पुत्रों ने पिण्डक्रिया की । हे लीले! जो तू ध्यान से उतरती तो तुझको देखके लोग आश्चर्यमान होते और अब भी देखके सब आश्चर्यमान होवेंगे कि रानी परलोक से फिर आई है । हे लीले! अब तुझको बोध उदय हुआ है इससे शरीर की वासना नष्ट हो गई और अन्तवाहक में दृढ़ निश्चय हुआ इस कारण वह शरीर जीवित हुआ । अब जो उसके समान तेरा शरीर हुआ है वह इस कारण है कि तुझको लीला की वासना में बोध हुआ है कि मैं लीला हूँ, इस कारण तेरा शरीर तैसा ही रहा । यह लीला शरीर की तेरी वासना नष्ट न हुई थी, इस कारण तू निर्वाण न हुई, नहीं तो विदेहमुक्त हो जाती । अब तू सत्संकल्प हुई जैसी तेरी इच्छा होगी तैसे ही अनुभव होगा । हे लीले! जैसी वासना जिसको होती है उसके अनुसार उसको प्राप्त होता है । जैसे बालक को अन्धकार में जैसी भावना होती है तैसा ही भान होता है-जो वैताल की भावना होती है तो वैताल हो भासता है

परन्तु वास्तव में वैताल की भावना होती है तो वैताल हो भासता है परन्तु वास्तव में वैताल कोई नहीं । तैसे जितनी आधिभौतिकता भासती है वह भ्रममात्र है । सब जीवों का आदि शरीर अन्तवाहक है सों प्रमाद से आधि भौतिकता भासता है । हे लीले! एक लिंगशरीर है; एक अन्तवाहक शरीर है-यह दोनों संकल्पमात्र हैं और इनमें इतना भेद है कि लिंगशरीर संकल्परूपी मन है उसमें जिसको आधिभौतिकता का अभिमान होता है उसको गौरत्व और कठोररूप और वर्णाश्रम का अभिमान होता है । जिस पुरुष को ऐसे अनात्मा में आत्माभिमान हुआ है जिसकी आधिभौतिक लिंगदेह है उसकी चिन्तना सत्य नहीं होती । जिसको आधिभौतिक का अभिमान नहीं होता वह अन्तवाहक शरीर है । वह जैसा चिन्तवन करता है वैसी ही सिद्धि होती है । हे लीले! तू अब अन्त वाहक में दृढ़ स्थित हुई है, इस कारण तेरा फिर वैसा ही शरीर हुआ है । तेरी आधिभौतिकता बुद्धि नष्ट हो गई और वह स्थूल शरीर शव होकर गिर पड़ा है जैसे जल से रहित मेघ हो और जैसे सुगन्ध से रहित फूल हो तैसे ही तेरा शरीर हो गया है और अब तू सत्य संकल्प हुई है । जैसा चिन्तवन कर तैसा ही होगा । हे लीले! यह कमलनयनी लीला तेरे भर्ता के पास बैठी है और उसको इस अन्तःपुर के लोग और सहेलियाँ जान नहीं सकतीं, क्योंकि मैंने इनको निद्रा में मोहित किया था । जबतक मेरा दर्शन इसको न होवेगा तबतक इसको और कोई न जान सकेगा अब यह हमको देखेगी । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ऐसे विचारके देवी उसको अपने संकल्प से ध्यान करने लगी तब उस लीला ने देखा कि अन्तःपुर में बहुत से सूर्यो का प्रकाश इकट्ठा हुआ है और चन्द्रमा की नाईं शीतल प्रकाश है । ऐसे दोनों देवियों को देखके उसने नमस्कार कर मस्तक नवाया और दोनों को स्वर्ण सिंहासन पर बैठाके कहने लगी, हे जीव की दाता! तुम्हारी जय हो! तुमने मुझपर बड़ी कृपा की । तुम्हारे ही प्रसाद से मैं यहाँ आई । देवी बोली, हे पुत्री! तू यहाँ कैसे आई और क्या वृत्तान्त तूने देखा सो कह ? विदूरथ की लीला बोली, हे देवी! जब मेरा भर्ता संग्राम में घायल हुआ तब उसको देखके मैं मूर्छित हो गिर पड़ी परन्तु मृतक न भई । इसके अनन्तर फिर मुझको चेतना फुरी तो मैंने अपना वही शरीर देखा और उस शरीर से मैं आकाशमार्ग को उड़ी । जैसे वायु गन्ध लेकर उड़ता है वैसे ही एक कुमारी मुझे उड़ाकर परलोक में भर्ता के पास बैठा आप अन्तर्धान हो गई । मेरा भर्ता जो संग्राम में थका था वह आके सो रहा है और मैं सँभलती देखती मार्ग में आई हूँ, परन्तु मुझको तुम दृष्टि कहीं न आई । यहाँ कृपाकर तुमने दर्शन दिया है । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार सुनके देवी ने प्रबुद्ध लीला से कहा कि अब मैं राजा की जीवकला को छोड़ती हूँ । ऐसे कहके देवी ने नासिका के मार्ग से जीव कला को छोड़ दिया और जैसे कमल के भीतर वायु प्रवेश कर जावे अथवा शरीर में वायु प्रवेश कर जावे वैसे ही शरीर में जीवकला प्रवेश कर गई । जैसे समुद्र जल से पूर्ण हो ता है वैसे ही पुर्यष्टक वासना से पूर्ण थी । शरीर की कान्ति उज्ज्वल हो गई और जैसे वसन्तऋतु में फूल और वृक्षों में रस फैलता है, अंगों में प्राणवायु फैल गई तब सब इंद्रियाँ खिल आईं जैसे वसन्तऋतु में फूल खिल आते हैं । तब राजा फूलों की शय्या से इस भाँति उठ

खड़ा हुआ जैसे रोका हुआ विन्ध्याचल पर्वत उठ आवे । तब दोनों लीला राजा के सम्मुख आ खड़ी हुईं और राजा से कहा मेरे आगे तुम कौन खड़ी हो! प्रबुद्ध लीला ने कहा, हे स्वामी! मैं तुम्हारी पूर्व पटरानी लीला हूँ; जैसे शब्द के संग अर्थ रहता है तैसे सदा तुम्हारे संग रहती हूँ । जब तुम यहाँ शरीर त्याग के परलोक में गये थे तब मुझसे तुम्हारा अतिस्नेह था, इससे मेरा प्रतिबिम्ब यह लीला तुमको भासी थी । अब जो और कथा का वृत्तान्त है सो मैं तुमसे कहती हूँ । हे राजन्! हमारे ऊपर इस देवी ने कृपा की है जो हमारे शीशपर स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी है । यह सरस्वती सर्व की जननी है; इसने हमारे ऊपर बड़ी कृपा की है और परलोक से तुम्हें ले आई है । हे रामजी! ऐसे सुनके राजा प्रसन्न हो उठ खड़ा हुआ और सरस्वती के चरणों पर मस्तक नवाकर बोला, हे सरस्वती! तुमको मेरा नमस्कार है । तुम सबकी हितकारिणी हो और तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है । अब कृपा करके मुझको यह वर दो कि मेरी आयु बड़ी हो; निष्कण्टक राज्य करूँ ; लक्ष्मी बहुत हो; रोग कष्ट न हो और आत्मज्ञान से सम्पन्न होऊँ अर्थात् भोग और मोक्ष दोनों दो । इतना कह कर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार राजा ने कहा तब देवी ने उसके शीश पर आशीर्वाद दिया कि हे राजन्! ऐसा ही होगा । तेरी आयु बड़ी होगी; तेरा शत्रु भी कोई न होगा; निष्कण्टक राज्य करेगा; आपदा तुझको न होगी; लक्ष्मी संपदा से सम्पन्न होगा; तेरी प्रजा भी बहुत सुखी रहकर तुझको देखके प्रसन्न होगी; तेरी प्रजा में आपदा किसी को न होगी और तू आत्मानन्द से भी पूर्ण होगा ।

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार कहके देवी अन्तर्धान हो गईं और प्रातःकाल का समय हुआ; सब लोग जाग उठे; सूर्य भी उदय हुआ और सूर्यमुखी कमल खिल आये । राजा दोनों लीला को कण्ठ लगा प्रसन्न और आश्चर्यमान हुआ, मन्दिर में नगारे बजने लगे और नाना शब्द होने लगे, मन्दिर में बड़ा हुलास और आनन्द हुआ अनेक अंगना नृत्य करने लगीं और बड़ा उत्साह हुआ । विद्याधर, सिद्ध, देवता, फूलों की वर्षा करने लगे और लोग बड़े आश्चर्यमान हुए कि लीला परलोक से फिर आई है और अपने भर्ता और एक आप-सी दूसरी लीला ले आई है । हे रामजी! यह कथा देश से देशान्तर चली गईं और सब लोग सुनके आश्चर्यमान हुए । जब इस प्रकार यह कथा प्रसिद्ध हुई तब राजा ने भी सुना कि मैं मरके फिर जिया हूँ और विचारा कि फिर मेरा अभिषेक हो । निदान मन्त्री और मण्डलेश्वरों ने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर से सब समुद्र और सर्व तीर्थों का जल मँगा राजा को राज का अभिषेक किया और चारों समुद्रों पर्यन्त राजा निष्कण्टक राज्य करने लगा । राजा और लीला यह पूर्व की कथा को विचारते और आश्चर्यमान होते थे । सरस्वती के उपदेश और प्रसाद से अपना पुरुषार्थ पाके राजा और दोनों लीला ने इस भाँति सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन्मुक्त होके राज किया और मन सहित षट्इन्द्रियों को

वश करके यथालाभ संतुष्ट रहे और दृश्यभ्रम उनका नष्ट हो गया । ऐसा सुन्दर राजा था कि उसकी सुन्दरता की कणिका मानों चन्द्रमा थी और उसके तेज की कणिका मानों सूर्य थी निदान उसने प्रजा को भली प्रकार संतुष्ट किया और सब प्रजा राजा को देख के प्रसन्न हुई और विदेह मुक्त हो दोनों लीला और तीसरा राजा निर्वाण-पद को प्राप्त हुए ।